जीवन विकास
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद
संत श्री आसारामजी महाराज
के पावन वचनामृत

पूज्य बापू जी के आशीर्वचन....

इस छोटी सी पुस्तिका में वो रत्न भरे हुए हैं जो जीवन को चिन्मय बना दें। हिटलर और सिकंदर की उपलब्धियाँ और यश उनके आगे अत्यंत छोटे दिखने लगे।

तुम अपने को सारे विश्व में व्याप्त अनुभव करो। इन विचार रत्नों को बार-बार विचारो। एकांत में शांत वातावरण में इन बन्धनों को दोहराओ। और.... अपना खोया हुआ खजाना अवश्य प्राप्त कर सकोगे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

करो हिम्मत......! मारो छलांग......! कब तक गिड़गिड़ाते रहोगे? हे भोले महेश ! तुम अपनी महिमा में जागो। कोई कठिन बात नहीं है। अपने साम्राज्य को सँभालो। फिर तुम्हें संसार और संसार की उपलब्धियाँ, स्वर्ग और स्वर्ग के सुख तुम्हारे कृपाकांक्षी महसूस होंगे। तुम इतने महान हो। तुम्हारा यश वेद भी नहीं गा सकते। कब तक इस देह की कैद में पड़े रहोगे?

ॐ.......! ॐ......!! ॐ.......!!!

उठो..... जागो......! बार-बार इन वचनों में अपने चित्त को सराबोर कर दो।

।। ॐ शांतिः ।।

अनुक्रम

निवेदन

बूँद-बूँद से सरिता और सरोवर बनते हैं, ऐसे ही छोटे-छोटे पुण्य महापुण्य बनते हैं। छोटे-छोटे सदगुण समय पाकर मनुष्य में ऐसी महानता लाते हैं कि व्यक्ति बन्धन और मुक्ति के पार अपने निज स्वरूप को निहारकर विश्वरूप हो जाता है।

जिन कारणों से व्यक्ति का जीवन अधःपतन की ओर जाता है वे कारण थोड़े-से इस पुस्तक में दर्शाये हैं। जिन उपायों से व्यक्ति का जीवन महानता की ओर चलता है वे उपाय, संतों के, शास्त्रों के वचन और अनुभव चुनकर आपके हाथ में प्रस्तुत करते हुए हम धन्य हो रहे हैं।

अनुक्रम

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

अमदाबाद आश्रम

अनुक्रम

जीवन विकास

हमारे शारीरिक व मानसिक आरोग्य का आधार हमारी जीवनशक्ति है। वह 'प्राण-शक्ति' भी कहलाती है। हमारे जीवन जीने के ढंग के मुताबिक हमारी जीवन-शक्ति का ह्रास या विकास होता है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने योग-दृष्टि से, आंतर-दृष्टि से व जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण करके जीवन-शक्ति विषयक गहनतम रहस्य खोज लिये थे। शुद्ध, सात्त्विक, सदाचारी जीवन और विधिवत् योगाभ्यास के द्वारा जीवन-शक्ति का विकास करके कैसी-कैसी रिद्धि-सिद्धियाँ हासिल की जा सकती हैं, आत्मोन्नति के कितने उत्तुंग शिखरों पर पहुँचा जा सकता है इसकी झाँकी महर्षि पतंजलि के योगदर्शन तथा अध्यात्मविद्या के शास्त्रों से मिलती है।

योगविद्या व ब्रह्मविद्या के इन सूक्ष्मतम रहस्यों का लाभ जाने अनजाने में भी आम जनता तक पहुँच जाए इसलिए प्रज्ञावान ऋषि-महर्षियों ने सनातन सत्य की अनुभूति के लिए जीवन-प्रणाली बनाई, विधि निषेध का ज्ञान देने वाले शास्त्र और विभिन्न स्मृतियों की रचना की। मानव यदि ईमानदारी से शास्त्र विहित मार्ग से जीवनयापन करे तो अपने आप उसकी जीवन-शक्ति विकसित होती रहेगी, शक्ति के ह्रास होने के प्रसंगों से बच जायेगा। उसका जीवन उत्तरोत्तर उन्नति के मार्ग पर चलकर अंत में आत्म-विश्रान्ति के पद पर पहुँच जायेगा।

प्राचीन काल में मानव का अन्तःकरण शुद्ध था, उसमें परिष्कृत श्रद्धा का निवास था। वह गुरु और शास्त्रों के वचनों के मुताबिक चल पड़ता था आत्मोन्नति के मार्ग पर। आजकल का मानव प्रयोगशील एवं वैज्ञानिक अभिगमवाला हो रहा है। विदेश में कई बुद्धिमान, विद्वान, वैज्ञानिक वीर हमारे ऋषि-महर्षियों के आध्यात्मिक खजाने को प्रयोगशील, नये अभिगम से खोजकर विश्व के समक्ष प्रमाणित कर रहे हैं कि खजाना कितना सत्य और जीवनोपयोगी है ! डॉ. डायमण्ड ने जीवन-शक्ति पर गहन अध्ययन व प्रयोग किये हैं। किन-किन कारणों से जीवन-शक्ति का विकास होता है और कैसे-कैसे उसका ह्रास होता रहता है यह बताया है।

निम्नलिखित बातों का प्रभाव हमारी जीवन शक्ति पर पड़ता हैः

मानसिक आघात, खिंचाव, घबड़ाहट, 'टेन्शन' का प्रभाव

डॉ डायमण्ड ने कई प्रयोग करके देखा कि जब कोई व्यक्ति अचानक किसी तीव्र आवाज को सुनता है तो आवाज के आघात के कारण उसी समय उसकी जीवन-शक्ति क्षीण हो जाती है, वह घबड़ा जाता है। वन में वनकेसरी सिंह गर्जना करता है तब हरिणादि प्राणियों की जीवनशक्ति क्षीण हो जाती है। वे डर के मारे इधर उधर भादौड़ करते हैं। सिंह को शिकार पाने मे ज्यादा परिश्रम नहीं करना पड़ता।

किसी डॉक्टर को अपने किसी मरीज से सन्तोष नहीं है। डॉक्टर से कहा जाए कि वह मरीज आपसे मिलना चाहता है तो डॉक्टर की जीवनशक्ति क्षीण होने लगती है। उससे कह दिया जाए कि तुम्हारी कसौटी की जा रही है फिर भी जीवन-शक्ति का ह्रास रुकता नहीं। डायमण्ड ने यंत्रों के द्वारा देखा कि अगर डॉक्टर अपनी जिह्वा का अग्र भाग तालुस्थान में, दाँतों से करीब आधा से.मी. पीछे लगाकर रखे तो उसकी जीवनशक्ति कम होने से बच जाती है।

तालुस्थान में जिह्वा लगाने से जीवन-शक्ति केन्द्रित हो जाती है। इसीलिए प्राचीन काल से ही योगीजन तालुस्थान में जिह्वा लगाकर जीवन-शक्ति को बिखरने से रोकते रहे होंगे। डॉ. डायमण्ड ने मंत्रजप एवं ध्यान के समय इस प्रकिया से जिन साधकों की जीवन-शक्ति केन्द्रित होती थी उनमें जप-ध्यान से शक्ति बढ़ रही थी, वे अपने को बलवान महसूस कर रहे थे। अन्य वे साधक जो इस क्रिया के बिना जप-ध्यान करते थे उन साधकों की अपेक्षा दुर्बलता महसूस करते थे।

जिह्वा को जब तालुस्थान में लगाया जाता है तब मस्तिष्क के दायें और बायें दोनों भागों में सन्तुलन रहता है। जब ऐसा सन्तुलन होता है तब व्यक्ति का सर्वांगी विकास होता है, सर्जनात्मक प्रवृत्ति खिलती है, प्रतिकूलताओं का सामना सरलता से हो सकता है। जब सतत मानसिक तनाव-खिंचाव, घबड़ाहट, टेन्शन का समय हो तब जिह्वा को तालुस्थान से लगाये रखने से जीवन-शक्ति क्षीण नहीं होती। शक्ति सुरक्षा यह एक अच्छा उपाय है।

जो बात आज वैज्ञानिक सिद्ध कर रहे हैं वह हमारे ऋषि-मुनियों ने प्राचीन काल से ही प्रयोग मे ला दी थी। खेद है कि आज का मानव इसका फायदा नहीं उठा रहा है।

कुदरती दृश्य देखने से, प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्र देखने से, जलराशि, सरिता-सरोवर-सागर आदि देखने से, हरियाली व वन आदि देखने से, आकाश की ओर निहारने से हमारे दायें-बायें दोनों मस्तिष्कों को संतुलित होने में सहायता मिलती है। इसीलिए हमारी देवी-देवताओं के चित्रों के पीछे उस प्रकार के दृश्य रखे जाते हैं।

कोई प्रिय काव्य, गीत, भजन, श्लोक आदि का वाचन, पठन उच्चारण करने से भी जीवन-शक्ति का संरक्षण होता है।

चलते वक्त दोनों हाथ आगे पीछे हिलाने से भी जीवन-शक्ति का विकास होता है।

अनुक्रम

भाव का प्रभाव

ईर्ष्या, घृणा, तिरस्कार, भय, कुशंका आदि कुभावों से जीवन-शक्ति क्षीण होती है। दिव्य प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, हिम्मत और कृतज्ञता जैसे भावों से जीवन-शक्ति पुष्ट होती है। किसी प्रश्न के उत्तर में हाँ कहने के लिए जैसे सिर को आगे पीछे हिलाते हैं वैसे सिर को हिलाने से जीवन-शक्ति का विकास होता है। नकारात्मक उत्तर में सिर को दायाँ, बायाँ घुमाते हैं वैसे सिर को घुमाने से जीवन शक्ति कम होती है।

हँसने से और मुस्कराने से जीवन शक्ति बढ़ती है। इतना ही नहीं, हँसते हुए व्यक्ति को या उसके चित्र को भी देखने से जीवन-शक्ति बढ़ती है। इसके विपरीत, रोते हुए उदास, शोकातुर व्यक्ति को या उसके चित्र को देखने से जीवन शक्ति का ह्रास होता है।

व्यक्ति जब प्रेम से सराबोर होकर 'हे भगवान ! हे खुदा ! हे प्रभु ! हे मालिक ! हे ईश्वर ! कहते हुए अहोभाव से 'हरि बोल' कहते हुए हाथों को आकाश की ओर उठाता है तो जीवनशक्ति बढ़ती है। डॉ. डायमण्ड इसको 'थायमस जेस्चर' कहते हैं। मानसिक तनाव, खिंचाव, दुःख-शोक, टेन्शन के समय यह क्रिया करने से और 'हृदय में दिव्य प्रेम की धारा बह रही है' ऐसी भावना करने से जीवन-शक्ति की सुरक्षा होती है। कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके सुनने से चित्त में विश्रान्ति मिलती है, आनन्द और उल्लास आता है। धन्यवाद देने से, धन्यवाद के विचारों से हमारी जीवन-शक्ति का विकास होता है। ईश्वर को धन्यवाद देने से अन्तःकरण में खूब लाभ होता है।

मि. डिलंड कहते हैं - "मुझे जब अनिद्रा का रोग घेर लेता है तब मैं शिकायत नहीं करता कि मुझे नींद नहीं आती.... नींद नहीं आती। मैं तो परमात्मा को धन्यवाद देने लग जाता हूँ, हे प्रभु ! तू कितना कृपानिधि है ! माँ के गर्भ में था तब तूने मेरी रक्षा की थी। मेरा जन्म हुआ तो कितना मधुर दूध बनाया ! ज्यादा फीका होता तो उबान आती, ज्यादा मीठा होता तो डायबिटीज

होता। न ज्यादा ठंडा न ज्यादा गर्म। जब चाहे जितना चाहे पी लिया। बाकी वहीं का वहीं सुरक्षित। शुद्ध का शुद्ध। माँ हरी सब्जी खाती है और श्वेत दूध बनाती है। गाय हरा घास खाती है और श्वेत दूध बनाती है। वाह प्रभु ! तेरी महिमा अपरंपार है। तेरी गरिमा का कोई बयान नहीं कर सकता। तूने कितने उपकार किये हैं हम पर ! कितने सारे दिन आराम की नींद दी ! आज के दिन नींद नहीं आयी तो क्या हर्ज है? तुझको धन्यवाद देने का मौका मिल रहा है।" इस प्रकार धन्यवाद देते हुए मैं ईश्वर के उपकार टूटी-फूटी भाषा में गिनने लगता हूँ इतने में तो नींद आ जाती है।

डॉ. डायमण्ड का कहना ठीक है कि धन्यवाद के भाव से जीवन-शक्ति का विकास होता है। जीवन-शक्ति क्षीण होती है तभी अनिद्रा का रोग होता है। रोग प्रतिकारक शक्ति क्षीण होती है तभी रोग हमला करते हैं।

वेद को सागर की तथा ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों को मेघ की उपमा दी गई है। सागर के पानी से चाय नहीं बन सकती, खिचड़ी नहीं पक सकती, दवाईयों में वह काम नहीं आता, उसे पी नहीं सकते। वही सागर का खास पानी सूर्य की किरणों से वाष्पीभूत होकर ऊपर उठ जाता है, मेघ बनकर बरसता है तो वह पानी मधुर बन जाता है। फिर वह सब कामों में आता है। स्वाती नक्षत्र में सीप में पड़कर मोती बन जाता है।

ऐसे ही अपौरूषय तत्त्व में ठहरे हुए ब्रह्मवेत्ता जब शास्त्रों के वचन बोलते हैं तो उनकी अमृतवाणी हमारे जीवन में जीवन-शक्ति का विकास करके जीवनदाता के करीब ले जाती है। जीवनदाता से मुलाकात कराने की क्षमता दे देती है। इसीलिए कबीर जी ने कहाः

सुख देवे दुःख को हरे करे पाप का अन्त।
कह कबीर वे कब मिलें परम स्नेही सन्त।।

परम के साथ उनका स्नेह है। हमारा स्नेह रुपयों में, परिस्थितियों में, प्रमोशनों में, मान-मिल्कियत में, पत्नी-पुत्र-परिवार, में धन में, नाते रिश्तों में, स्नेही-मित्रों में, मकान-दुकान में, बँटा हुआ हैं। जिनका केवल परम के साथ स्नेह है ऐसे महापुरुष जब मिलते हैं तब हमारी जीवन-शक्ति के शतशः झरने फूट निकलते हैं।

इसीलिए परमात्मा के साथ संपूर्ण तादात्म्य साधे हुए, आत्मभाव में ब्रह्मभाव में जगे हुए संत-महात्मा-सत्पुरुषों के प्रति, देवी-देवता के प्रति हृदय में खूब अहोभाव भरके दर्शन करने का, उनके चित्र या फोटोग्राफ अपने घर में, पूजाघर में, प्रार्थना-खण्ड में रखने का माहात्म्य बताया

गया है। उनके चरणों की पूजा-आराधना-उपासना की महिमा गाने वाले शास्त्र भरे पड़े हैं। 'श्री गुरु गीता' में भगवान शंकर भी भगवती पार्वती से कहते हैं –

यस्य स्मरणमात्रेण ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम् ।
सः एव सर्वसम्पत्तिः तस्मात्संपूजयेद् गुरुम् ।।

जिनके स्मरण मात्र से ज्ञान अपने आप प्रकट होने लगता है और वे ही सर्व (शमदमादि) सम्पदा रूप हैं, अतः श्री गुरुदेव की पूजा करनी चाहिए।

अनुक्रम

संगीत का प्रभाव

विश्वभर में सात्त्विक संगीतकार प्रायः दीर्घायुषी पाये जाते हैं। इसका रहस्य यह है कि संगीत जीवन-शक्ति को बढ़ाता है। कान द्वारा संगीत सुनने से तो यह लाभ होता ही है अपितु कान बन्द करवा के किसी व्यक्ति के पास संगीत बजाया जाये तो भी संगीत के स्वर, ध्वनि की तरंगें उसके शरीर को छूकर जीवन-शक्ति के बढ़ाती हैं। इस प्रकार संगीत आरोग्यता के लिए भी लाभदायी है।

जलप्रपात, झरनों के कल-कल छल-छल मधुर ध्वनि से भी जीवन शक्ति का विकास होता है। पक्षियों के कलरव से भी प्राण-शक्ति बढ़ती है।

हाँ, संगीत में एक अपवाद भी है। पाश्चात्य जगत में प्रसिद्ध रॉक संगीत (Rock Music) बजाने वाले एवं सुनने वाली की जीवनशक्ति क्षीण होती है। डॉ. डायमण्ड ने प्रयोगों से सिद्ध किया कि सामान्यतया हाथ का एक स्नायु 'डेल्टोइड' 40 से 45 कि.ग्रा. वजन उठा सकता है। जब रॉक संगीत (Rock Music) बजता है तब उसकी क्षमता केवल 10 से 15 कि.ग्रा. वजन उठाने की रह जाती है। इस प्रकार रॉक म्यूज़िक से जीवन-शक्ति का ह्रास होता है और अच्छे, सात्त्विक पवित्र संगीत की ध्वनि से एवं प्राकृतिक आवाजों से जीवन शक्ति का विकास होता है। श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाया करते उसका प्रभाव पड़ता था यह सुविदित है। श्रीकृष्ण जैसा संगीतज्ञ विश्व में और कोई नहीं हुआ। नारदजी भी वीणा और करताल के साथ हरिस्मरण किया करते थे। उन जैसा मनोवैज्ञानिक संत मिलना मुश्किल है। वे मनोविज्ञान की स्कूल-कालेजों में नहीं गये थे। **मन को जीवन-तत्त्व में विश्रान्ति दिलाने से** मनोवैज्ञानिक योग्यताएँ अपने आप विकसित होती हैं। श्री शंकराचार्य जी ने भी कहा है कि चित्त के प्रसाद से सारी योग्यताएँ विकसित होती हैं।

प्रतीक का प्रभाव

विभिन्न प्रतीकों का प्रभाव भी जीवन-शक्ति पर गहरा पड़ता है। डॉ. डायमण्ड ने रोमन क्रॉस को देखने वाले व्यक्ति की जीवनशक्ति क्षीण होती पाई।

स्वस्तिकः स्वस्तिक समृद्धि व अच्छे भावी का सूचक है। उसके दर्शन से जीवनशक्ति बढ़ती हैं।

जर्मनी में हिटलर की नाजी पार्टी का निशान स्वस्तिक था। क्रूर हिटलर ने लाखों यहूदियों के मार डाला था। वह जब हार गया तब जिन यहूदियों की हत्या की जाने वाली थी वे सब मुक्त हो गये। तमाम यहूदियों का दिल हिटलर और उसकी नाजी पार्टि के लिए तीव्र घृणा से युक्त रहे यह स्वाभाविक है। उन दुष्टों का निशान देखते ही उनकी क्रूरता के दृश्य हृदय को कुरेदने लगे यह स्वाभाविक है। स्वास्तिक को देखते ही भय के कारण यहूदी की जीवनशक्ति क्षीण होनी चाहिए। इस मनोवैज्ञानिक तथ्यों के बावजूद भी डायमण्ड के प्रयोगों ने बता दिया कि स्वस्तिक का दर्शन यहूदी की जीवनशक्ति को भी बढ़ाता है। स्वस्तिक का शक्तिवर्धक प्रभाव इतना प्रगाढ़ है।

स्वस्तिक के चित्र को पलकें गिराये बिना, एकटक निहारते हुए त्राटक का अभ्यास करके जीवनशक्ति का विकास किया जा सकता है।

अनुक्रम

लोक-संपर्क व सामाजिक वातावरण का प्रभाव

एक सामान्य व्यक्ति जब दुर्बल जीवन-शक्ति वाले लोगों के संपर्क में आत है तो उसकी जीवनशक्ति कम होती है और अपने से विकसित जीवन-शक्तिवाले के संपर्क से उसकी जीवनशक्ति बढ़ती है। कोई व्यक्ति अपनी जीवन-शक्ति का विकास करे तो उसके सम्पर्क में आने वाले लोगों की जीवन-शक्ति भी बढ़ती है और वह अपनी जीवन-शक्ति का ह्रास कर बैठे तो और लोगों के लिए भी समस्या खड़ी कर देता है।

तिरस्कार व निन्दा के शब्द बोलने वाले की शक्ति का ह्रास होता है। उत्साहवर्धक प्रेमयुक्त वचन बोलने वाले की जीवनशक्ति बढ़ती है।

यदि हमारी जीवन-शक्ति दुर्बल होगी तो चेपी रोग की तरह आसपास के वातावरण में से हलके भाव, निम्न कोटि के विचार हमारे चित्त पर प्रभाव डालते रहेंगे।

पहले के जमाने में लोगों का परस्पर संपर्क कम रहता था इससे उनकी जीवनशक्ति अच्छी रहती थी। आजकल बड़े-बड़े शहरों में हजारों लोगों के बीच रहने से जीवनशक्ति क्षीण होती रहती है, क्योंकि प्रायः आम लोगों की जीवनशक्ति कम होती है, अल्प विकसित रह जाती है।

रेडियो, टी.वी., समाचार पत्र, सिनेमा आदि के द्वारा बाढ़, आग, खून, चोरी, डकैती, अपहरण आदि दुर्घटनाओं के समाचार पढ़ने-सुनने अथवा उनके दृश्य देखने से जीवन-शक्ति का ह्रास होता है। समाचार पत्रों में हिटलर, औरंगजेब जैसे क्रूर हत्यारे लोगों के चित्र भी छपते हैं, उनको देखकर भी प्राण-शक्ति क्षीण होती है।

बीड़ी-सिगरेट पीते हुए व्यक्तियों वाले विज्ञापन व अहंकारी लोगों के चित्र देखने से भी जीवन-शक्ति अनजाने में ही क्षीण होती है। विज्ञापनों में, सिनेमा के पोस्टरों में अर्धनग्न चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं वे भी जीवनशक्ति के लिए घातक हैं।

देवी-देवताओं के, संत-महात्मा-महापुरुषों के चित्रों के दर्शन से आम जनता को अनजाने में ही जीवनशक्ति का लाभ होता रहता है।

अनुक्रम

भौतिक वातावरण का प्रभाव

व्यवहार में जितनी कृत्रिम चीजों का उपयोग किया जाता है उतनी जीवनशक्ति को हानि पहुँचती है। टेरेलीन, पोलिएस्टर आदि सिन्थेटिक कपड़ों से एवं रेयोन, प्लास्टिक आदि से बनी हुई चीजों से जीवनशक्ति को क्षति पहुँचती है। रेशमी, ऊनी, सूती आदि प्राकृतिक चीजों से बने हुए कपड़े, टोपी आदि से वह नुक्सान नहीं होता। अतः सौ प्रतिशत कुदरती वस्त्र पहनने चाहिए। आजकल शरीर के सीध स्पर्श में रहने वाले अन्डरवेयर, ब्रा आदि सिन्थेटिक वस्त्र होने के कारण जीवनशक्ति का ह्रास होता है। आगे चलकर इससे कैन्सर होने की सम्भावना रहती है।

रंगीन चश्मा, इलेक्ट्रोनिक घड़ी आदि पहनने से प्राण शक्ति क्षीण होती है। ऊँची एड़ी के चप्पल, सेन्डल आदि पहनने से जीवनशक्ति कम होती है। रसायन लगे हुए टीस्यू पेपर से भी प्राणशक्ति को क्षति पहुँचती है। प्रायः तमाम परफ्यूम्स सिन्थेटिक होते हैं, कृत्रिम होते हैं। वे सब हानिकारक सिद्ध हुए हैं।

बर्फवाला पानी पीने से भी जीवन-शक्ति कम होती है। किसी भी प्रकार की फ्लोरेसन्ट लाइट, ट्यूब लाइट के सामने देखने से जीवनशक्ति कम होती है।

हमारे वायुमंडल में करीब पैंतीस लाख रसायन मिश्रित हो चुके हैं। उद्योगों के कारण होने वाले इस वायु प्रदूषण से भी जीवनशक्ति का ह्रास होता है।

बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू आदि के व्यसन से प्राण-शक्ति को घोर हानि होती है। केवल इन चीजों का व्यसनी ही नहीं बल्कि उसके संपर्क में आनेवाले भी उनके दुष्परिणामों के शिकार होते हैं। कमरे में एक व्यक्ति बीड़ी या सिगरेट पीता हो तो उसके शरीर के रक्त में जितना तम्बाकू का विष, निकोटिन फैल जाता है उतना ही निकोटि बीस मिन्ट के अन्दर ही कमरे में रहने वाले अन्य सब लोगों के रक्त में भी मिल जाता है। इस प्रकार **बीड़ी, सिगरेट पीने वाले के इर्दगिर्द रहने वालों को भी उतनी ही हानि होती है।**

बीड़ी-सिगरेट पीनेवाले आदमी का चित्र देखने से भी प्राणशक्ति का क्षय होता है।

एक्स-रे मशीन के आसपास दस फीट के विस्तार में जाने वाले आदमी की प्राण-शक्ति में घाटा होता है। एक्स-रे फोटो खिंचवाने वाले मरीज के साथ रहने वाले व्यक्ति को सावधान रहना चाहिए। एक्स रे रक्षणात्मक कोट पहनकर मरीज के साथ रहना चाहिए।

आहार का प्रभाव

ब्रेड, बिस्कुट, मिठाई आदि कृत्रिम खाद्य पदार्थों से एवं अतिशय पकाये हुए पदार्थों से जीवनशक्ति क्षीण होती है। प्रायः हम जो पदार्थ आजकल खा रहे वे हम जितना मानते हैं उतने लाभदायक नहीं हैं। हमें केवल आदत पड़ गई है इसलिए खा रहे हैं।

थोड़ी खांड खाने से क्या हानि है? थोड़ा दारू पीने से क्या हानि है? ऐसा सोचकर लोग आदत डालते हैं। लेकिन खांड का जीवनशक्ति घटानेवाला जो प्रभाव है वह मात्रा पर आधारित नहीं है। कम मात्रा में लेने से भी उसका प्रभाव उतना ही पड़ता है।

एक सामान्य आदमी की जीवनशक्ति यंत्र के द्वारा जाँच लो। फिर उसके मुँह में खांड दो और जीवनशक्ति को जाँचो। वह कम हुई मिलेगी। तदनन्तर उसके मुँह में शहद दो और जीवनशक्ति जाँचो। वह बढ़ी हुई पाओगे। इस प्रकार डॉ. डायमण्ड ने प्रयोगों से सिद्ध किया कि कृत्रिम खांड आदि पदार्थों से जीवनशक्ति का ह्रास होता है और प्राकृतिक शहद आदि से विकास होता है। कंपनियों के द्वारा बनाया गया और लेबोरेटरियों के द्वारा पास किया हुआ 'बोटल पेक' शहद जीवनशक्ति के लिए लाभदायी नहीं होता जबकि प्राकृतिक शहद लाभदायी होता है। खांड बनाने के कारखाने में गन्ने के रस को शुद्ध करने के लिए रसायनों का उपयोग किया जाता है। वे रसायन हानिकारक हैं।

हमारे यहाँ करोड़ों अरबों रुपये कृत्रिम खाद्य पदार्थ एवं बीड़ी-सिगरेट के पीछे खर्च किये जाते हैं। परिणाम में वे हानि ही करते हैं। प्राकृतिक वनस्पति, तरकारी आदि भी इस प्रकार पकाये जाते हैं कि उनमें से जीवन-तत्त्व नष्ट हो जाते हैं।

अनुक्रम

शारीरिक स्थिति का प्रभाव

जो लोग बिना ढंग के बैठते हैं। सोते हैं, खड़े रहते हैं या चलते हैं वे खराब तो दिखते ही हैं, अधिक जीवनशक्ति का व्यय भी करते हैं। हर चेष्टा में शारीरिक स्थिति व्यवस्थित रहने से प्राणशक्ति के वहन में सहाय मिलती है। कमर झुकाकर, रीढ़ की हड्डी टेढ़ी रखकर बैठने-चलने वालों की जीवनशक्ति कम हो जाती है। उसी व्यक्ति को सीधा बैठाया जाए, कमर, रीढ़ की हड्डी, गरदन व सिर सीधे रखकर फिर जीवनशक्ति नापी जाये तो बढ़ी हुई मिलेगी।

पूर्व और दक्षिण दिशा की ओर सिर करके सोने से जीवनशक्ति का विकास होता है। जबकि पश्चिम और उत्तर की दिशा की ओर सिर करके सोने से जीवनशक्ति का ह्रास होता है।

हिटलर जब किसी इलाके को जीतने के लिए आक्रमण तैयारी करता तब अपने गुप्तचर भेजकर जाँच करवाता कि इस इलाके के लोग कैसे बैठते चलते हैं? युवान की तरह टट्टार (सीधे) या बूढ़ों की तरह झुक कर? इससे वह अन्दाजा लगा लेता कि वह इलाका जीतने में परिश्रम पड़ेगा या आसानी से जीता जायेगा।

टट्टार बैठने-चलने वाले लोग साहसी, हिम्मतवाले, बलवान, कृतनिश्चयी होते हैं। उन्हे हराना मुश्किल होता है। झुककर चलने-बैठने वाले जवान हो भी बूढ़ों की तरह निरुत्साही, दुर्बल, डरपोक, निराश होते हैं, उनकी जीवनशक्ति का ह्रास होता रहता है। चलते-चलते जो लोग बातें करते हैं वे मानो अपने आपसे शत्रुता करते हैं। इससे जीवन शक्ति का खूब ह्रास होता है।

हरेक प्रकार की धातुओं से बनी कुर्सियाँ, आरामकुर्सी, नरम गद्दीवाली कुर्सीयाँ जीवन शक्ति को हानि पहुँचाती हैं। सीधी, सपाट, कठोर बैठकवाली कुर्सी लाभदायक है।

पानी में तैरने से जीवनशक्ति का खूब विकास होता है। तुलसी, रूद्राक्ष, सुवर्णमाला धारण करने से जीवन-शक्ति बढ़ती है।

जीवन-शक्ति विकसित करना और जीवनदाता को पहचानना यह मनुष्य जन्म का लक्ष्य होना चाहिए। केवल तन्दरुस्ती तो पशुओं को भी होती है। दीर्घ आयुष्यवाले वृक्ष भी होते हैं। लेकिन हे मानव ! तुझे दीर्घायु के साथ दिव्य दृष्टि भी खोलनी है।

हजारों तन तूने पाये, हजारों मन के संकल्प विकल्प आये और गये। इस सबसे जो परे है, इन सब का जो वास्तविक जीवनदाता है वह तेरा आत्मा है। उस आत्मबल को जगाता रह..... उस आत्मज्ञान को बढ़ाता रह.... उस आत्म-प्रीति को पाता रह।

ॐ......! ॐ.......!! ॐ.........!!!

लोग क्यों दुःखी हैं? क्योंकि अज्ञान के कारण वे अपना सत्य स्वरूप भूल गये हैं और अन्य लोग जैसा कहते हैं वैसा ही अपने को मान बैठते हैं। यह दुःख तब तक दूर नहीं होगा जब तक मनुष्य आत्मसाक्षात्कार नहीं कर लेगा।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

सफलता का रहस्य

कोई आदमी गद्दी तकियों पर बैठा है। हट्टा कट्टा है, तन्दरुस्त है, लहलहाता चेहरा है तो उसकी यह तन्दरुस्ती गद्दी-तकियों के कारण नहीं है अपितु उसने जो भोजन आदि खाया है, उसे ठीक से पचाया है इसके कारण वह तन्दरुस्त है, हट्टा कट्टा है।

ऐसे ही कोई आदमी ऊँचे पद पर, ऊँची शान में, ऊँचे जीवन में दिखता है, ऊँचे मंच पर से वक्तव्य दे रहा है तो उसके जीवन की ऊँचाई मंच के कारण नहीं है। जाने अनजाने में उसके जीवन में परहितता है, जाने अनजाने आत्मनिर्भरता है, थोड़ी बहुत एकाग्रता है। इसी कारण वह सफल हुआ है। जैसे तंदरुस्त आदमी को देखकर गद्दी-तकियों के कारण वह तंदरुस्त है ऐसा मानना गलत है ऐस ही ऊँचे पदवियों पर बैठे हुए व्यक्तियों के विषय में सोचना कि ऊँची पदवियों के कारण वे ऊँचे हो गये हैं, छलकपट करके ऊँचे हो गये हैं यह गलती है, वास्तव में ऐसी बात नहीं है। छलकपट और धोखा-धड़ी से तो उनका अन्तःकरण और नीचा होता और वे असफल रहते। जितने वे सच्चाई पर होते हैं, जाने अनजाने में भी परहित में रत होते हैं, उतने वे ऊँचे पद को पाते हैं।

पर में भी वही परमात्मा है। व्यक्तित्व की स्वार्थ-परायणता जितनी कम होती है, छोटा दायरा टूटने लगता है, बड़े दायरे में वृत्ति आती है, परहित के लिए चिन्तन व चेष्टा होने लगती है तभी आदमी वास्तव में बड़प्पन पाता है।

गुलाब का फूल खिला है और सुहास प्रसारित कर रहा है, कइयों को आकर्षित कर रहा है तो उसकी खिलने की और आकर्षित करने की योग्यता गहराई से देखो तो मूल के कारण है। ऐसे किसी आदमी की ऊँचाई, महक, योग्यता दिखती है तो जाने अनजाने उसने जहाँ से मनःवृत्ति फुरती है उस मूल में थोड़ी बहुत गहरी यात्रा की है, तभी यह ऊँचाई मिली है।

धोखा-धड़ी के कारण आदमी ऊँचा हो जाता तो सब क्रूर आदमी धोखेबाज लोग ऊँचे उठ जाते। वास्तव में ऊँचे उठे हुए व्यक्ति ने अनजाने में एकत्व का आदर किया है, अनजाने में समता की कुछ महक उसने पाई है। दुनिया के सारे दोषों का मूल कारण है देह का अहंकार, जगत में सत्यबुद्धि और विषय-विकारों से सुख लेने की इच्छा। सारे दुःखों का विघ्नों का, बीमारियों का यही मूल कारण है। सारे सुखों का मूल कारण है जाने अनजाने में देहाभ्यास से थोड़ा ऊपर उठ जाना, अहंता, ममता और जगत की आसक्ति से ऊपर उठ जाना। जो आदमी कार्य के लिए कार्य करता है, फलेच्छा की लोलुपता जितनी कम होती है उतने अंश में ऊँचा उठता है और सफल होता है।

सफलता का रहस्य है आत्म-श्रद्धा, आत्म-प्रीति, अन्तर्मुखता, प्राणीमात्र के लिए प्रेम, परहित-परायणता।

परहित बस जिनके मन मांही।
तिनको जग दुर्लभ कछु नाहीं।।

एक बच्चे ने अपने भाई से कहाः "पिता जी तुझे पीटेंगे।" भाई ने कहाः "पीटेंगे तो.... पीटंगे। मेरी भलाई के लिए पीटेंगे। इससे तुझे क्या मिलेगा?" ऐसे ही मन अगर कहने लगे कि तुम पर यह मुसीबत पड़ेगी, भविष्य में यह दुःख होगा, भय होगा तो निश्चिंत रहो कि अगर परमात्मा दुःख, क्लेश आदि देगा तो हमारी भलाई के लिए देगा। अगर हम पिता की आज्ञा मानते हैं, वे चाहते हैं वैसे हम करते हैं तो पिता पागल थोड़े ही हुए हैं कि वे हमें पीटेंगे? ऐसे ही सृष्टिकर्ता परमात्मा पागल थोड़े ही हैं कि हमें दुःख देंगे? दुःख तो तब देंगे जब हम गलत मार्ग पर जायेंगे। गलत रास्ते जाते हैं तो ठीक रास्ते पर लगाने के लिए दुःख देंगे। दुःख आयेगा तभी जगन्नियन्ता का द्वार मिलेगा। परमात्मा सभी के परम सुहृद हैं। वे सुख भी देते हैं तो हित के लिए और दुःख भी देते हैं तो हित के लिए। भविष्य के दुःख की कल्पना करके घबड़ाना,

चिन्तित होना, भयभीत होना बिल्कुल जरूरी नहीं है। जो आयेगा, आयेगा.... देखा जायेगा। अभी वर्तमान में प्रसन्न रहो, स्वार्थ-त्याग और धर्म-परायण रहो।

सारे दुःखों की जड़ है स्वार्थ और अहंकार। स्वार्थ और अहंकार छोड़ते गये तो दुःख अपने आप छूटते जाएँगे। कितने भी बड़े भारी दुःख हों, तुम त्याग और प्रसन्नता के पुजारी बनो। सारे दुःख रवाना हो जायेंगे। जगत की आसक्ति, परदोषदर्शन और भोग का पुजारी बनने से आदमी को सारे दुःख घेर लेते हैं।

कोई आदमी ऊँचे पद पर बैठा है और गलत काम कर रहा है तो उसे गलत कामों से ऊँचाई मिली है ऐसी बात नहीं है। उसके पूर्व के कोई न कोई आचरण अद्वैत ज्ञान की महक से युक्त हुए होंगे तभी उसको ऊँचाई मिली है। अभी गलत काम कर रहा है तो वह अवश्य नीचे आ जायेगा। फरेब, धोखा-धड़ी, ईर्ष्या-घृणा करेगा तो नीचे आ जायेगा।

विद्यार्थी सफल कब होता है? जब निश्चिंत होकर पढ़ता है, निर्भीक होकर लिखता है तो सफल होता है चिन्तित भयभीत होकर पढ़ता लिखता है तो सफल नहीं होता। युद्ध में योद्धा तभी सफल होता है जब जाने अनजाने में देहाध्यास से परे हो जाता है। वक्ता वक्तृत्व में तब सफल होता है जब अनजाने में ही देह को 'मैं', 'मेरे' को भूला हुआ होता है। उसके द्वारा सुन्दर सुहावनी वाणी निकलती है। अगर कोई लिखकर, पढ़कर, रटकर, प्रभाव डालने के लिए यह बोलूँगा...... वह बोलूँगा..... ऐसा करके जो आ जाते हैं वे पढ़ते-पढ़ते भी ठीक नहीं बोल पाते। जो अनजाने में देहाध्यास को गला चुके हैं वे बिना पढ़े, बिना रटे जो बोलते हैं वह संतवाणी बन जाती है, सत्संग हो जाता है।

जितने हम अंतर्यामी परमात्मा के वफादार है, देहाध्यास से उपराम है, जगत की तू तू मैं मैं की आकर्षणों से रहित हैं, सहज और स्वाभाविक हैं उतने ही आन्तरिक स्रोत से जुड़े हुए हैं और सफल होते हैं। जितना बाह्य परिस्थितियों के अधीन हो जाते हैं आन्तरिक स्रोत से सम्बन्ध छिन्न-भिन्न कर देते हैं उतने ही हमारे सुन्दर से सुन्दर आयोजन भी मिट्टी में मिल जाते हैं। इसीलिए, हर क्षेत्र में सफल होना है तो अन्तर्यामी से एकता करके की संसार की सब चेष्टाएँ करो। भीतर वाले अन्तर्यामी से जब तुम बिगाड़ते हो तब दुनिया तुम से बिगाड़ती है।

लोग सोचते हैं कि, 'फलाने आदमी ने सहकार दिया, फलाने मित्रों ने साथ दिया तभी वह बड़ा हुआ, सफल हुआ।' वास्तव में जाने अनजाने में फलानों की सहायता की अपेक्षा उसने ईश्वर में ज्यादा विश्वास किया। तभी फलाने व्यक्ति उसकी सहायता करने में प्रवृत्त हुए। अगर वह ईश्वर

से मुँह मोड़ ले और लोगों की सहायता पर निर्भर हो जाए तो वे ही लोग आखिरी मौके पर बहानाबाजी करके पिण्ड छुड़ा लेंगे, खिसक जायेंगे, उपराम हो जायेंगे। यह दैवी विधान है।

भय, विघ्न, मुसीबत के समय भी भय-विघ्न-मुसीबत देने वालों के प्रति मन में ईर्ष्या, घृणा, भय ला दिया तो जरूर असफल हो जाओगे। भय, विघ्न, मुसीबत, दुःखों के समय भी अन्तर्यामी आत्मदेव के साथ जुड़ोगे तो मुसीबत डालने वालों का स्वभाव बदल जायेगा, विचार बदल जायेंगे, उनका आयोजन फेल हो जाएगा, असफल हो जाएगा। जितना तुम अन्तर्यामी से एक होते हो उतना तुम सफल होते हो और विघ्न-बाधाओं से पार होते हो। जितने अंश में तुम जगत की वस्तुओं पर आधारित रहते हो और जगदीश्वर से मुँह मोड़ते हो उतने अंश में विफल हो जाते हो।

स्त्री वस्त्रालंकार आदि से फैशनेबल होकर पुरुष को आकर्षित करना चाहती है तो थोड़ी देर के लिए पुरुष आकर्षित हो जाएगा लेकिन पुरुष की शक्ति क्षीण होते ही उसके मन में उद्वेग आ जाएगा। अगर स्त्री पुरुष की रक्षा के लिए, पुरुष के कल्याण के लिए सहज स्वाभाविक पतिव्रता जीवन बिताती है, सात्त्विक ढंग से जीती है तो पति के दिल में उसकी गहरी जगह बनती है।

ऐसे ही शिष्य भी गुरु को धन, वैभव, वस्तुएँ देकर आकर्षित करना चाहता है, दुनियाई चीजें देकर लाभ ले लेना चाहता है तो गुरु ज्यादा प्रसन्न नहीं होंगे। लेकिन भक्तिभाव से भावना करके सब प्रकार उनका शुभ चाहते हुए सेवा करता है तो गुरु के हृदय में भी उसके कल्याण का संकल्प स्फुरेगा।

हम जितना बाह्य साधनों से किसी को वश में करना चाहते हैं, दबाना चाहते हैं, सफल होना चाहते हैं उतने ही हम असफल हो जाते हैं। जितना-जितना हम अन्तर्यामी परमात्मा के नाते सफल होना चाहते हैं, परमात्मा के नाते ही व्यवहार करते हैं उतना हम स्वाभाविक तरह से सफल हो जाते हैं। निष्कंटक भाव से हमारी जीवन-यात्रा होती रहती है।

अपने को पूरे का पूरा ईश्वर में अर्पित करने का मजा तब तक नहीं आ सकता जब तक संसार में, संसार के पदार्थों में सत्यबुद्धि रहेगी। 'इस कारण से यह हुआ.... उस कारण से वह हुआ....' ऐसी बुद्धि जब तक बनी रहेगी तब तक ईश्वर में समर्पित होने का मजा नहीं आता। कारणों के भी कारण अन्तर्यामी से एक होते हो तो तमाम परिस्थितियाँ अनुकूल बन जाती हैं। अन्तरम चैतन्य से बिगाड़ते हो तो परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो जाती हैं। अतः अपने चित्त में बाह्य कार्य कारण का प्रभाव ज्यादा मत आने दो। कार्य-कारण के सब नियम माया में हैं। माया ईश्वर की सत्ता से है। तुम परम सत्ता से मिल जाओ, बाकी का सब ठीक होता रहेगा।

न्यायाधीश तुम्हारे लिए फैसला लिख रहा है। तुम्हारे लिए फाँसी या कड़ी सजा का विचार कर रहा है। उस समय भी तुम अगर पूर्णतः ईश्वर को समर्पित हो जाओ तो न्यायाधीश से वही लिखा जायेगा जो तुम्हारे लिए भविष्य में अत्यंत उत्तम हो। चाहे वह तुम्हारे लिए कुछ भी सोचकर आया हो, तुम्हारा आपस में विरोध भी हो, तब भी उसके द्वारा तुम्हारे लिए अमंगल नहीं लिखा जायेगा, क्योंकि मंगलमूर्ति परमात्मा में तुम टिके हो न ! जब तुम देह में आते हो, न्यायाधीश के प्रति दिल में घृणा पैदा करते हो तो उसकी कोमल कलम भी तुम्हारे लिए कठोर हो जायेगी। तुम उसके प्रति आत्मभाव से, 'न्यायाधीश के रूप में मेरा प्रभु बैठा है, मेरे लिए जो करेगा वह मंगल ही करेगा' – ऐसे दृढ़ भाव से निहारोगे तो उसके द्वारा तुम्हारे प्रति मंगल ही होगा।

बाह्य शत्रु, मित्र में सत्यबुद्धि रहेगी, 'इसने यह किया, उसने वह किया किसलिए ऐसा हुआ' – ऐसी चिन्ता-फिकर में रहे तब तक धोखे में रहोगे। सब का मूल कारण ईश्वर जब तक प्रतीत नहीं हुआ तब तक मन के चंगुल में हम फँसे रहेंगे। अगर हम असफल हुए हैं, दुःखी हुए हैं तो दुःख का कारण किसी व्यक्ति को मत मानो। **अन्दर जाँचों कि तुमको जो प्रेम ईश्वर से करना चाहिए वह प्रेम उस व्यक्ति के बाह्य रूप से तो नहीं किया?** इसलिए उस व्यक्ति के द्वारा धोखा हुआ है। जो प्यार परमात्मा को करना चाहिए वह प्यार बाह्य चीजों के साथ कर दिया इसीलिए उन चीजों से तुमको दुःखी होना पड़ा है।

सब दुःखों का कारण एक ही है। ईश्वर से जब तुम नाता बिगाड़ते हो तभी फटका लगता है, अन्यथा फटके का कोई सवाल ही नहीं है। जब-जब दुःख आ जाये तब समझ लो कि मैं भीतर वाले अन्तर्यामी ईश्वर से बिगाड़ रहा हूँ। 'इसने ऐसा किया..... उसने वैसा किया..... वह रहेगा तो मैं नहीं रहूँगा.....' ऐसा बोलना-समझना केवल बेवकूफी है। 'मेरी बेवकूफी के कारण यह दिखता है, परन्तु मेरे प्रियतम परमात्मा के सिवा तीनों काल में कुछ हुआ ही नहीं है' – ऐसी समझ खुले तो बेड़ा पार हो।

अगर फूल की महक पौधे की दी हुई है तो काँटों को रस भी उसी पौधे ने दे रखा है। जिस रस से गुलाब महका है उसी रस से काँटे पनपे हैं। काँटों के कारण ही गुलाब की सुरक्षा होती है ऐसी सृष्टिकर्त्ता आदि चैतन्य की लीला है।

फरियादी जीवन जीकर अपना सत्यानाश मत करो। अपने पुण्य नष्ट मत करो। जब-जब दुःख होता है तो समझ लो कि ईश्वर के विधान के खिलाफ तुम्हारा मन कुछ न कुछ 'जजमेन्ट' दे रहा है। तभी दुःख होता है, तभी परेशानी आती है, पलायनवाद आता है।

जीवन की सब चेष्टाएँ केवल ईश्वर की प्रसन्नता के लिए हो। किसी व्यक्ति को फँसाने के लिए यदि वस्त्रालंकार परिधान किये तो उस व्यक्ति से तुम्हें दुःख मिलेगा। क्योंकि उसमें भी ईश्वर बैठा है। जब सबमें ईश्वर है, सर्वत्र ईश्वर है तो जहाँ जो कुछ कर रहे हो, ईश्वर के साथ ही कर रहे हो। जब तक यह दृष्टि परिपक्व नहीं होती तब तक ठोकरें खानी पड़ती हैं।

किसी आदमी का धन, वैभव, सत्ता देखकर वह अपने काम में आयेगा ऐसा समझकर उससे नाता जोड़ दो तो अंत में धोखा खाओगे। बड़े आदमी का बड़प्पन जिस परम बड़े के कारण है उसके नाते अगर उससे व्यवहार करते हो अवश्य उसका धन, सत्ता, वैभव, वस्तुएँ तुम्हारी सेवा में लग जाएँगे। लेकिन भीतर वाले से बिगाड़कर उसकी बाह्य वस्तुएँ देखकर उसकी चापलूसी में लगे तो वह तुम्हारा नहीं रहेगा।

नगाड़े से निकलती हुई ध्वनि पकड़ने जाओगे तो नहीं पकड़ पाओगे। लेकिन नगाड़ा बजाने वाले को पकड़ लो तो ध्वनि पर तुम्हारा नियंत्रण अपने आप हो जाएगा। ऐसे ही मूल को जिसने पकड़ लिया उसने कार्य-कारण पर नियन्त्रण पा लिया। सबका मूल तो परमात्मा है। अगर तुम्हारा चित्त परमात्मा में प्रतिष्ठित हो गया तो सारे कार्य-कारण तुम्हारे अनुकूल हो जायेंगे। चाहे आस्तिक हो चाहे नास्तिक, यह दैवी नियम सब पर लागू होता है। ईश्वर को कोई माने या न माने, अनजाने में भी जो अन्तर्मुख होता है, एकाकार होता है, ईश्वर के नाते, समाज सेवा के नाते, सच्चाई के नाते, धर्म के नाते, अपने स्वभाव के नाते, जाने अनजाने में आचरण वेदान्ती होता है। वह सफल होता है।

कोई भले ही धर्म की दुहाइयाँ देता हो पर उसका आचरण वेदान्ती नहीं है तो वह दुःखी रहेगा। कोई कितना भी धार्मिक हो लेकिन आधार में वेदान्त नहीं है तो वह पराधीन रहेगा। **कोई व्यक्ति कितना भी अधार्मिक दिखे लेकिन उसका आचरण वेदान्ती है तो वह सफल होगा, सब पर राज्य करेगा। चाहे किसी देवी-देवता, ईश्वर, धर्म या मजहब को नहीं मानता फिर भी भीतर सच्चाई है, किसी का बुरा नहीं चाहता, इन्द्रियों को वश में रखता है, मन शान्त है, प्रसन्न है तो यह ईश्वर की भक्ति है।**

यह जरूरी नहीं कि मंदिर-मस्जिद में जाकर गिड़गिड़ाने से ही भक्ति होती है। अन्तर्यामी परमात्मा से तुम जितने जुड़ते हो, सच्चाई और सदगुणों के साथ उतनी तुम्हारी ईश्वर-भक्ति बन जाती है। जितना अन्तर्यामी ईश्वर से नाता तोड़कर दूर जाते हो, भीतर एक और बाहर दूसरा आचरण करते हो तो कार्य-कारण के नियम भी तुम पर बुरा प्रभाव डालेंगे।

नटखट नागर भगवान श्रीकृष्ण मक्खन चुराते, साथियों को खिलाते, खाते और दही-मक्खन की मटकियाँ फोड़ते थे। फिर थोड़ा सा मक्खन बछड़ों के मुँह पर लगाकर भाग जाते। घर के लोग बछड़ों के मुँह पर लगा हुआ मक्खन देखकर उन्हीं की यह सब करतूत होगी यह मानकर बछड़े को पीटते।

वास्तव में सबका कारण एक ईश्वर ही है। बीच में बेचारे बछड़े, पीटे जाते हैं। 'मैं... तू... यह.... वह.... सुख.... दुःख.... मान.... अपमान.....' फाँसी की सजा.... सबका कारण तो वह मूल चैतन्य परमात्मा है लेकिन उस परमात्मा से बेवफाई करके मन रूपी बछड़े बेचारे पीटे जाते हैं।

बड़े से बड़ा परमात्मा है उससे नाता जुड़ता है तब बेड़ा पार होता है। केवल नाम बड़े रखने से कुछ नहीं होता। हैं कगंले-दिवालिये, घर में कुछ नहीं है और नाम है करोड़ीमल, लखपत राम, हजारीप्रसाद, लक्ष्मीचन्द। इससे क्या होगा?

गोबर ढूँढत है लक्ष्मी, भीख माँगत जगपाल ।
अमरसिंह तो मरत है, अच्छो मेरे ठंठनपाल ।।

महल बड़े बनाने से, गाड़ियाँ बढ़िया रखने से, बढ़िया हीरे-जवाहरात पहनने से सच्ची सुख-शान्ति थोड़े ही मिलती है ! भीतर के आनन्द रूपी धन के तो कंगाल ही हैं। जो आदमी भीतर से कंगाल है। उसको उतनी ही बाह्य चीजों की गुलामी करनी पड़ती है। बाह्य चीजों की जितनी गुलामी रहेगी उतना आत्म-धन से आदमी कंगाल होगा।

किसी के पास आत्म-धन है और बाह्य धन भी बहुत है तो उसको बाह्य धन की उतनी लालसा नहीं है। प्रारब्ध वेग से सब मिलता है। आत्म-धन के साथ सब सफलताएँ भी आती हैं। आत्म-धन में पहुँच गये तो बाह्य धन की इच्छा नहीं रहती, वह धन अपने आप खिंचकर आता है। जैसे, व्यक्ति आता है तो उसके पीछे छाया भी आ जाती है। ऐसे ही ईश्वरत्व में मस्ती आ गई तो बाह्य सुख-सुविधाएँ प्रारब्ध वेग होता है तो आ ही जाती हैं। नहीं भी आतीं तो उनकी आकांक्षा नहीं होती। ईश्वर का सुख ऐसा है। जब तक बचपन है, बचकानी बुद्धि है तब तक गुड्डे-गुड्डियों से खेलते हैं। बड़े हो गये, जवान हो गये, शादी हो गई तो गुड्डे-गुड्डियों का खेल कहाँ रहेगा? बुद्धि बालिश होती है, तो जगत की आसक्ति होती है। बुद्धि विकसित होती है, विवेक संपन्न होती है तो जगत की वस्तुओं की पोल खुल जाती है। विश्लेषण करके देखो तो सब पाँच भूतों का पसारा है। मूर्खता से जब गुड्डे-गुड्डियों से खेलते रहे तो खेलते रहे लेकिन बात समझ में आ गई तो वह खेल छूट गया। ब्रह्म से खेलने के लिए पैदा हुए हो। परमात्मा से खेलने के लिए तुम

जन्मे हो, न कि गुड्डे-गुड्डी रूपी संसार के कार्य-कारण के साथ खेलने के लिए। मनुष्य जन्म ब्रह्म-परमात्मा से तादात्म्य साधने के लिए, ब्रह्मानन्द पाने के लिए मिला है।

जवान लड़की को पति मिल जाता है फिर वह गुड्डे-गुड्डियों से थोड़ी ही खेलती है? ऐसे ही हमारे मन को परम पति परमात्मा मिल जाये तो संसार के गुड्डे-गुड्डियों की आसक्ति थोड़े ही रहेगी।

कठपुतलियों का खेल होता है। उस खेल में एक राजा ने दूसरे राजा को बुलाया। वह अपने रसाले साथ लाया। उसका स्वागत किया गया। मेजबानी हुई। फिर बात बात में नाराजगी हुई। दोनों ने तलवार निकाली, लड़ाई हो गई। दो कटे, चार मरे, छः भागे।

दिखता तो बहुत सारा है लेकिन है सब सूत्रधार का अंगुलियों की करामात। ऐसे ही संसार में बाहर कारण कार्य दिखता है लेकिन सबका, सूत्रधार अन्तर्यामी परमात्मा एक का एक है। अच्छा-बुरा, मेरा-तेरा, यह-वह, सब दिखता है लेकिन सबका मूल केन्द्र तो अन्तर्यामी परमात्मा ही है। उस महाकारण को देख लो तो बाहर के कार्य-कारण खिलवाड़ मात्र लगेंगे।

महाकारण रूप भीतरवाले अन्तर्यामी परमात्मा से कोई नाता बिगाड़ता है तो बाहर के लोग उसे दुःख देते हैं। भीतर वाले से अगर नहीं बिगाड़े तो बाहर के लोग भी उससे नहीं बिगाड़ेंगे। वह अन्तर्यामी सबमें बस रहा है। अतः किसी का बुरा न चाहो न सोचो। जिसका टुकड़ा खाया उसका बुरा तो नहीं लेकिन जिसने गाली दी उसका भी बुरा नहीं चाहो। उसके अन्दर भी वही अन्तर्यामी परमात्मा बैठा है। हम बुरा चाहने लग जाते हैं तो अन्दरवाले से हम बिगाड़ते हैं। हम अनुचित करते हैं तो भीतर वाला प्रभु रोकता है लेकिन हम आवेग में, आवेश में, विषय-विकारों में बुद्धि के गलत निर्णयों में आकर भीतर वाले की आवाज दबा देते हैं और गलत काम करते हैं तो ठोकर खानी ही पड़ती है। बिल्कुल सचोट अनुभव है।

मन कुछ कहता है, बुद्धि कुछ कहती है, समाज कुछ कहता है लेकिन तुम्हारे हृदय की आवाज सबसे निराली है तो हृदय की आवाज को ही मानो, क्योंकि सब की अपेक्षा हृदय परमात्मा से ज्यादा नजदीक है।

बाहर के शत्रु-मित्र का ज्यादा चिन्तन मत करो। बाहर की सफलता-असफलता में न उलझो। आँखें खोलो। शत्रु-मित्र, सफलता-असफलता सबका मूल केन्द्र वही अधिष्ठान आत्मा है और वह आत्मा तुम्हीं हो क्यों कें... कें... करके चिल्ला रहे हो, दुःखी हो रहे हो? दुःख और चिन्ताओं के बन्डल बनाकर उठा रहे हो और सिर को थका रहे हो? दूर फेंक दो सब कल्पनाओं को। 'यह ऐसा है वह ऐसा है... यह कर डालेगा... वह मार देगा.... मेरी मुसीबत हो जाएगी....!'

अरे ! हजारों बम गिरे फिर भी तेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। तू ऐसा अजर-अमर आत्मा है। तू वही है।

नैनं छिन्दन्ति शास्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

'इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, जल भिगो नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकती।' (भगवदगीताः 2-23)

तू ऐसा है। अपने मूल में चला आ। अपने आत्मदेव में प्रतिष्ठित हो जा। सारे दुःख, दर्द, चिन्ताएँ काफूर हो जाएँगे। नहीं तो ऐसा होगा कि मानो खारे समुद्र में डूबता हुआ आदमी एक तिनके को पकड़कर बचना चाह रहा है। संसार की तिनके जैसी वस्तुएँ पकड़कर कोई अमर होना चाहे, सुखी होना चाहे, प्रतिष्ठित होना चाहे तो वह उतना ही पागलपन करता है जो एक तिनके को पकड़कर सागर पार करना चाहता है। बाहर की वस्तुओं से कोई संसार में सुखी होना चाहता है, अपने दुःख मिटाना चाहता है तो वह उतनी ही गलती करता है। संसार से पार पाना हो, दुःख मिटाना हो, सुखी होना हो तो दुःखहारी श्रीहरि की शरण लो भीतर ही भीतर। परम सुख पाना हो तो भीतर परम सुख स्वरूप श्रीहरि को प्यार कर लो। सुख के द्वार खुल जायेंगे। तिनका पकड़कर आज तक कोई खारा समुद्र तैर कर पार नहीं हुआ। संसार की वस्तुएँ पकड़कर आज तक कोई सुखी नहीं हुआ।

'यम, कुबेर, देवी-देवता, सूर्य-चन्द्र, हवाएँ सब मुझ चैतन्य की सत्ता से अपने नियत कार्य में लगे हैं। ऐसा मैं आत्मदेव हूँ।' इस वास्तविकता में जागो। अपने को देह मानना, अपने को व्यक्ति मानना, अपने को जातिवाला मानना क्या? अपने को ब्रह्म जानकर मुक्ति का अभी अनुभव कर लो। दुनिया क्या कहती है इसके चक्कर में मत पड़ो। उपनिषद क्या कहते हैं? वेद क्या कहता है, यह देखो। उसके ज्ञान को पचाकर आप अमर हो जाओ और दूसरों के लिए अमरता का शंखनाद कर दो।

श्रीकृष्ण जैसे महान ज्ञानी ! प्रतिज्ञा की थी कि महाभारत के युद्ध में अस्त्र-शस्त्र नहीं उठाऊँगा। फिर देखा कि अर्जुन की परिस्थिति नाजुक हो रही है तो सुदर्शन चक्र तो नहीं उठाया लेकिन रथ का पहिया उठाकर दौड़े। बूढ़े भीष्म को भी हँसी आ गई कि यह कन्हैया कैसा अटपटा है।

हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि इतने महान ज्ञानी श्रीकृष्ण और बंसी बजाते हैं, नाचते हैं। बछड़ों के पूँछ पकड़ कर दौड़ते हैं। गायों के सींगों को पकड़ कर खेलते हैं। क्योंकि

श्रीकृष्ण अपने निजानन्द स्वरूप में निमग्न रहते हैं। आज का मनुष्य भेदभाव से, देहाध्यास बढ़ाकर अहंकार और वासनाओं के कीचड़ में लथपथ रहता है।

चलो, उठो। छोड़ो देहाभिमान को। दूर फेंको वासनाओं को। शत्रु-मित्र में, तेरे-मेरे में, कारणों के कारण, सबमें छुपा हुआ अपना दैवी स्वभाव निहारो।

शत्रु-मित्र सबका कारण कृष्ण हमारा आत्मा है। हम किसी व्यक्ति पर दोषारोपण कर बैठते हैं। 'हमने इसको गिराया, उसने पतन कराया...' ऐसे दूसरों को निमित्त बनाते हैं। वास्तव में अपनी वासना ही पतन का कारण है। दुनिया में और कोई किसी का पतन नहीं कर सकता। जीव की अपनी दुष्ट इच्छाएँ-वासनाएँ पतन की खाई में उसे गिराती हैं। अपनी सच्चाई, ईश्वर प्रेम, शुद्ध-सरल व्यवहार अपने को खुश रखता है, प्रसन्न रखता है, उन्नत कराता है।

यह भोग-पदार्थ फलाना आदमी हमें दे गया...। अरे प्रारब्ध वेग से पदार्थ आया लेकिन पदार्थ का भोक्ता बनना न बनना तुम्हारे हाथ की बात है। प्रारब्ध से धन तो आ गया लेकिन धन थोड़े ही बोलता है कि हमारा गुलाम बनो।

प्रारब्ध वस्तुएँ दे सकता है, वस्तुएँ छीन सकता है लेकिन वस्तुओं में आसक्त न होना, वस्तुएँ चली जाएँ तो दुःखी होना न होना तुम्हारे हाथ की बात है। प्रारब्ध से पुरुषार्थ बढ़िया होता है। पुरुषार्थ से प्रारब्ध बदला जा सकता है, मिथ्या किया जा सकता है। मन्द प्रारब्ध को बदला जाता है, कुचला जाता है, तरतीव्र प्रारब्ध को मिथ्या किया जाता है। अपने आत्मबल पर निर्भर रहना कि कार्य-कारण भाव में कुचलते रहना है?

बालुभाई टेलिफोन बीड़ी के सेल्समैन थे। ग्राहकों को समझाते, पिलाते, खुद भी पीते। टी.बी. हो गया। आखिरी मुकाम आ गया। डॉक्टरों ने कहाः छः महीने के भीतर ही स्वर्गवासी हो जाओगे। बालुभाई नौकरी छोड़कर नर्मदा किनारे कोरल गाँव चले गये। स्नानसंध्या करते, महादेव जी की पूजा करते, आर्तभाव से प्रार्थना करते, पुकारते। अन्तर्यामी से तादात्म्य किया। छः महीने में जाने वाले थे इसके बदले छः महीने की आराधना-उपासना से तबीयत सुधर गई। टी.बी. कहाँ गायब हो गया, पता नहीं चला। बालूभाई ने निर्णय किया कि मर जाता तो जाता। जीवनदाता ने जीवन दिया है तो अब उसकी सेवा में शेष जीवन बिताऊँगा। नौकरी-धन्धे पर नहीं जाऊँगा। ध्यान-भजन सेवा में ही रहूँगा।

वे लग गये ईश्वर के मार्ग पर। कण्ठ तो मधुर था भजन गाते थे। दान-दक्षिणा जो कुछ आता उसका संग्रह नहीं करते लेकिन परहित में लगा देते थे। स्वत्व को परहित में लगाने से यश फैल जाता है। बालुभाई का यश फैल गया। वे 'पुनित महाराज' के नाम से अभी भी विख्यात

हैं। उनके जाने के बाद उनके नाम की संस्थाएँ चलती हैं। मूल में कुछ है तभी तो फूल खिला है। मूल में खाद-पानी हो तभी पौधा लहलहाता है, फूलों में महक आती है। कोई भी संस्था, संघ, धर्म चमकता है तो उसके मूल में कुछ न कुछ सच्चाई है, परहितता है। धोखा-धड़ी फरेब से नहीं चमक सकते। कुछ न कुछ सेवाभाव होता है तो चमकता है, प्रसिद्ध होता है। अगर धोखा-धड़ी और स्वार्थ बढ़ने लगता है तो उन संस्थाओं का पतन भी हो जाता है। धोखा-धड़ी से, प्रचार-साधनों के बल से कोई धर्म, पंथ, सम्प्रदाय फैला हो, साथ में सच्चाई और सेवाभाव न हो तो वह ज्यादा समय टिक भी नहीं सकता।

निर्मम, निरहंकार होने से शरीर में आत्म-ज्योति की शक्ति ऐसे फैलती है जैसे फानूस में से प्रकाश। तुम जितने अहंता-ममता से रहित होगे उतनी आत्म-ज्योति तुम्हारे द्वारा चमकेगी, औरों को प्रकाश देगी।

अहंकार करने से, व्यक्तित्व को सजाने से मोह नहीं जाता। दूसरों को जितनी टोटा चबाने की इच्छा है उतनी खीर खांड खिलाने की भावना करो तो घृणा प्रेम में बदल जायेगी। असफलता सफलता में बदल जायेगी। मानो, कोई तुम्हारा कुछ बिगाड़ रहा है। वह जितना बिगाड़ता है उससे ज्यादा जोर से तुम उसका भला करो, उसका भला चाहो, विजय तुम्हारी होगी। वह मेरा बुरा करता है तो मैं उसका सवाया बुरा करूँ – ऐसा सोचोगे तो तुम्हारी पराजय हो जायेगी। तुम उसी के पक्ष में हो जाओगे। किसी घमंडी अहंकारी को ठीक करने के लिए तुमको भी अहंकार का शरण लेना पड़ा। अन्तर्यामी से एक होकर अपनत्व के भाव से सामने वाले के कल्याण के चिन्तन में लग गये तो वह तुम्हारे पक्ष में आये बिना नहीं रहेगा। बाहर के कारणों के लेकर उसको ठीक करना चाहा तो तुम उसके पक्ष में हो गये। अन्तर्यामी से एक होकर बाह्य कारणों का, साधनों का थोड़ा बहुत उपयोग कर लिया तो कोई हरकत नहीं है। लेकिन पहले अन्तर्यामी से एक हो जाओ। भीतर वाले से बिगाड़ो हो नहीं।

शत्रु का भी अहित न चाहो। कोई अत्यन्त निष्कृष्ट है तो थोड़ी बहुत सजा-शिक्षा चाहे करो लेकिन द्वेष भाव से नहीं, उसका मंगल हो इस भाव से। जैसे तुम अपने इकलौते बेटे को सजा देना चाहो तो कैसे देते हो? बाप कहे कि, 'या तो बेटा रहेगा या मैं रहूँगा' तो यह उसकी बुद्धि का दिवाला है, ज्ञान व समता की कमी है।

समतावाले को फरियाद कहाँ? फरियाद के समय समता कहाँ?

पाप-पुण्य, सुख-दुःख ये सब तुम्हारे द्वारा दिखते हैं। ये परप्रकाश्य हैं, तुम स्वप्रकाश हो। ये जड़ हैं। तुम चेतन हो। चेतन होकर जड़ चीजों से डर रहे हो। यह बड़ा विशाल भवन हमने

बनाया है। उससे भय कैसा? ऐसे ही दुःख-सुख, पुण्य-पाप सब हमारे चैतन्य के फुरने से ही बने हैं। उनसे क्या डरना?

जीवन में त्याग और प्रेम आ जाये तो सब सुख आ जाये। स्वार्थ और घृणा आ जाये तो सब दुःख आ जाये। कारणों के कारण उस ईश्वर से तादात्म्य हो जाये तो सारे दुःख-सुख खेल मात्र रह जायेंगे। इस बात पर तुम डट जाओ तो दुनिया और दुनिया के पदार्थों की क्या ताकत है कि तुम्हारी सेवा न करें? अपने भीतर वाले अन्तर्यामी आत्मा से अभेदभाव से व्यवहार करने लग जाओ तो सब लोग चाकर की तरह तुम्हारी सेवा करके अपना भाग्य बनाने लग जायेंगे। परिस्थितियाँ तुम्हारे लिए करवटें लेंगी, रंग बदलेंगी। अग्नि की ज्वालाएँ नीचे की ओर जाने लगे और सूर्य पश्चिम में उदय होने लगे तब भी वेद भगवान के ये वचन गलत नहीं हो सकते। भगवान ने गीता में कहा हैः

अनन्याशिचन्तायन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

'अनन्य चित्त से चिन्तते हुए जो लोग मेरी उपासना करते हैं उन नित्ययुक्त पुरुषों का योगक्षेम मैं अपने ऊपर लेता हूँ।' (भगवदगीताः 9.21)

'इतना मुनाफा करें, इतने रूपयों की व्यवस्था कर लें बाद में भजन करेंगे।' तो ईश्वर से रूपयों को, परिस्थितियों को ज्यादा मूल्य दे दिया। हरिद्वार-ऋषिकेश में ऐसे कई लोग है जो रूपये 'फिक्स डिपोज़िट' में रखकर, किराये के कमरे लेकर भजन करते हैं। उनका आश्रय ईश्वर नहीं है, उनका आश्रय सूद (ब्याज) है, उनका आश्रय पेन्शन है। ब्याज खाकर जीते हैं और आखिर में मूड़ी (धन) का क्या होगा यह चिन्ता करते-करते विदा होते हैं। जिन्होंने बाहर के बड़े-बड़े आश्रय बनाकर भजन किया उनके भजन में कोई सफलता नहीं आयी। जिन्होंने बाहर के सब आश्रयों को लात मार दी, ठुकरा दिया, पूर्ण रूपेण ईश्वर के होकर घर से चल पड़े उनको भजन की सब सुविधायें मिल ही गईं। खाना-पीना, रहन-सहन का इन्तजाम अपने आप होता रहा और भजन भी फल गया। ब्याज के रुपयों पर जीनेवालों की अपेक्षा ईश्वर के आधार पर जीनेवालों को अधिक सुविधाएँ मिल जाती हैं।

हमारा ही उदाहरण देख लो, हम दो भाई थे। भाई से अपना हिस्सा लेकर 'फिक्स डिपोज़िट' में रखकर फिर भजन करते, एकान्त में कमरा लेकर साधना करते तो अभी तक वहीं माला घुमाते रहते। सब आश्रय छोड़कर ईश्वर के शरण गये तो हमारे लिए ईश्वर ने क्या नहीं किया? किस बात की कमी रखी है उस प्यारे परमात्मा ने? हम लोगों के समर्पण की कमी है जो

परमात्मा की गरिमा का, महिमा का पता नहीं लगा सकते, इस दिव्य व्यवस्था का लाभ नहीं उठा सकते। परमात्मा अपनी ओर से कोई कमी नहीं रखता।

हम तो घरवालों को सूचना देते है कि, 'ऐसे रहना, वैसे रहना, करकसर से जीना। हम भजन को जाते हैं।' पीछे की रस्सियाँ दिमाग में लेकर भजन करने जाते हैं तो फिर आत्मनिष्ठा भी ऐसी कंगली ही बनेगी। मार दो छलांग ईश्वर के लिए....। अनन्त जन्मों से बच्चे, परिवार होते आये हैं। उनका प्रारब्ध वे जानें। मेरा तो केवल परमात्मा ही है और परमात्मा का मैं हूँ। ऐसा करके जो लग पड़ते हैं उनका कल्याण हो जाता है।

एक माई घर से जा रही थी। पड़ोसिन को सूचना देने लगीः 'अमथी बा ! मैं सती होने जा रही हूँ। मेरे रसोई घर का दरवाजा खुला रह गया है, वह बन्द कर देना। मेरे बच्चों को नहलाकर स्कूल भेजना।'

अमथी बा हँसने लगी।

'क्यों हँसती हो?' माई ने पूछा।

'तू क्या होगी सती?'

'हाँ हाँ, मैं जा रही हूँ सती होने के लिए।'

'चल चल, आयी बड़ी सती होने वाली।'

माई स्मशान की ओर तो चली लेकिन सोचने लगी कि जाने वाला तो गया। अब अपने लिए तो नहीं लेकिन छोटे बच्चों के लिए तो जीना चाहिए। वह घर वापस चली आयी।

लोग ईश्वर-भजन के लिए घर-बार तो छोड़ते हैं लेकिन किसी सेठ के यहाँ रुपये जमा कर जाते हैं। वह सेठ हर माह रकम भेजता रहता है। ऐसे भजन में बरकत नहीं आयेगी। अनन्य का सहारा छोड़ दिया और एक व्यक्ति में सहारा ढूँढा। अखण्ड के सहारे को भूलकर खण्ड के सहारे जिये।

एक वे साधू हैं जो रूपये पैसे सँभालते नर्मदा की परिक्रमा करते हैं। उनके रुपये पैसे भील लोग छीन लेते हैं। लेकिन जो साधू सबका सहारा छोड़कर ईश्वर के सहारे चल पड़ता है उसको सब वस्तुएँ आ मिलती हैं। जहाँ कोई व्यक्ति देनेवाला नहीं होता वहाँ नर्मदाजी वृद्धा का रूप लेकर आ जाती हैं। चीज-वस्तु देकर देखते-देखते ही अदृश्य हो जाती हैं। कइयों के जीवन में ऐसी घटनाएँ देखी गई हैं।

उपनिषद का ज्ञान आदमी का सब दुःख, पाप, थकान, अज्ञान, बेवकूफी हँसते-हँसते दूर कर देता है।

जो परमात्मा को ब्रह्म को सब में प्रगट देखता है उसके रिद्धि-सिद्धि, देवी-देवता सब वश में हो जाते हैं। इतने जरा-से ज्ञान में डट जाओ तो बाकी का सब तुम्हारी सेवा में सार्थक होने लगेगा। सम्राट के साथ एकता कर लो तो सेना, सेनापति, दास-दासियाँ, सूबेदार, अमलदार सब ठीक हो जाते हैं। ऐसे ही विश्व के सम्राट ब्रह्म-परमात्मा का पूरा वफादार हो जा, फिर विश्व का पूरा माल-खजाना तेरा ही है। कितना अच्छा सौदा है यह ! अन्यथा एक-एक चपरासी, अमलदार को जीवनभर रिझाते मर जाना है।

जो एक ईश्वर से ठीक प्रकार ईमानदारी पूर्वक चलता है, ब्रह्म में प्रतिष्ठित हो जाता है, जो परमात्मा से आकर्षित हो जाता है, उसकी तरफ सब भूत, पदार्थ, वस्तुएँ आकर्षित हो जाती हैं। देवता उसके लिए बलि ले आते हैं। जैसे दो किलो के लोह चुम्बक से आधे किलो की प्लेट जुड़ गई। उस प्लेट से और छोटे-छोटे लोह के कण जुड़ गये। क्यो? क्योंकि प्लेट का मैग्नेट से तादात्म्य हो गया है इसी से लोहे के कण उससे प्रभावित हो गये हैं। वे तब तक ही प्रभावित रहेंगे जब तक लोहे की प्लेट मैग्नेट से जुड़ी है। मैग्नेट को छोड़ते ही लोहे के कण प्लेट को छोड़ देंगे।

ऐसे ही मैग्नेट परमात्मा से तुम्हारी बुद्धि जुड़ी है तो लोग तुमसे जुड जायेंगे। परमात्मा से विमुख होने का कारण है 'मैं' पना, अहंता और वस्तुओं में ममता। अहंता और ममता से आदमी परमात्मा से विमुख होता है। अहंता और ममता का त्याग करने से परमात्मा के सम्मुख हो जाता है।

महान् होने की महिमा भी बताई जा रही है, इलाज भी बताया जा रहा है, जो महान हुए हैं उनके नाम भी बताये जा रहे हैं – स्वामी रामतीर्थ, नानक, कबीर, तुकाराम, एकनाथ, ज्ञानेश्वर, मीरा, रामकृष्ण, रमण, संत लीलाशाहजी बापू, सहजो, मदालसा, गार्गी, मलुकादास, रामनुजाचार्य, शंकराचार्य आदि आदि।

सब कुछ छोड़ कर वे संत ईश्वर के रास्ते चले। कुछ भी नहीं था उनके पास, फिर भी सब कुछ उनका हो गया। जिन्होंने अपना राजपाट, धन-वैभव, सत्ता-सम्पत्ति आदि सब सम्भाला, उनका आखिर में कुछ अपना रहा नहीं। जिन्होंने अहंता-ममता छोड़ी उन संत-महापुरुषों को लोग अभी तक याद कर रहे हैं, श्रीकृष्ण को, रामजी को, जनक को, जड़भरत जी को।

अगर निवृत्ति-प्रधान प्रारब्ध है तो उनके पास वस्तुएँ नहीं होंगी। प्रवृत्ति साधन प्रारब्ध है तो वस्तुएँ होंगी। वस्तुओं का होना न होना। इससे बड़प्पन-छोटापन नहीं होता है। तुम ईश्वर से

मिलते हो तो बड़प्पन है, वस्तुओं की गुलामी करनी हो तो छोटापन है। एकदम सरल सीधी बात है। वेद भगवान और उपनिषद हमसे कुछ छिपाते नहीं।

'यह जो सब कुछ दिखता है वह सब वास्तव में ईश्वर है, आत्मा है, ब्रह्म है' – ऐसा जो देखता है वह वास्तव में देखता है। वह सब वस्तुओं को सब सुखों को पा लेता है। मुक्ति तो उनके हाथ की बात है। अपनी निजी मूड़ी (पूंजी) है। सब ब्रह्म है।

कोई सोचे कि, 'सब ब्रह्म है तो मजे से खायें, पीयें, मौज उड़ायें, नींद करें।' हाँ.... खाओ, पियो लेकिन इससे रजो-तमोगुण आयेगा तो निष्ठा दब जायगी। रजो तमोगुण आत्मनिष्ठा को दबा देते हैं। रजो-तमोगुण उभर आयेगा तो 'सब ईश्वर है' इस ज्ञान को दबा देगा क्योंकि अभी नये हैं न? सर्वब्रह्म का अनुभव अभी नूतन अनुभव है।

जब सर्वात्म-दृष्टि हुई तब रोग, शोक, मोह पास नहीं फटक सकते। वेद ने कोई संदिग्ध दृष्टि से यह नहीं कहा, बिलकुल यथार्थ कहा है। सर्वात्म-दृष्टि करो तो रोग-शोक, चिन्ता, भय, सब भाग जायेंगे।

विषय का दुःख और चिंताओं का विचार करके, कें कें करके क्यों सिकुड़ता है भैया? जो कुछ होगा, तेरे कल्याण के लिए होगा क्योंकि भगवान का विधान मंगलमय ही है। सिवाय तेरे मंगल के और कभी कुछ नहीं होगा। लेकिन खबरदार ! सब भगवान अपनी दुर्बलताओं को, विकारों को पोसना नहीं अपितु त्याग, धर्म, प्रेम और परमात्माभाव को प्रकट करना है। अरे यार! मनुष्य जन्म पाकर भी शोक, चिन्ता, भय और भावी के लिए शंकित रहे को बड़े शर्म की बात है। दुःख वे करें जिसके माँ-बाप, सच्चे नाते-रिश्तेदार, कुटुम्ब-परिवार सब मर गये हों। तेरे सच्चे माँ-बाप, सच्चे नाते-रिश्तेदार तेरा अन्तर्यामी आत्मा-परमात्मा है। खुश बैठ, मौज में रह। कई वर्ष बीत गये ऐसे यह वर्ष भी बीत जायेगा। यह बात पक्की रख। दिल में जमा ले। ईश्वर के नाते कार्य कर। अपने स्वार्थ और व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कतई सोचना छोड़ दे। इससे बढ़िया, ऊँची अवस्था और कोई नहीं है। तेरे लिए मानव तो क्या, यक्ष, किन्नर, गंधर्व और देवता भी लोहे के चने चबाने के लिए तत्पर रहेंगे।

आजमा कर देख इस नुस्खे को। संदेह को गोली मार। ॐ का मधुर गुंजन कर। आत्मस्थ हो। लड़खड़ाते हुए चिन्तित होकर, बोझिल मन बनाकर संसार के कार्य मत कर। कुलीन राजकुमार की तरह खेल समझकर संसार के व्यवहार को चतुराई से कर। लेकिन याद रखः कर्तापन को बार-बार झाड़ दिया कर। फिर तेरा जीवन हजारों के लिए अनुकरणीय न हो जाये तो

वक्ता को समुद्र में डुबा देना। लेकिन सावधान ! पहले तू अपने को ईश्वरीय समुद्र में डुबाकर देख।

वास्तव में जैसा तुम्हारा चित्त होता है वैसे चित्त और स्वभाव वाले तुम्हारे पास आकर्षित हो जाते हैं। औरों की अवस्था पर भला बुरा चिन्तन करते रहने से कभी झगड़ा निपटता नहीं। दूसरे लोगों को क्या पकड़ना? सोचो और अनुभव करो कि, 'सब मनों का मन मैं हूँ, सब चित्तों का चित्त मैं हूँ।' अन्दर में ऐसी एकता है कि अपने को शुद्ध करते ही सब शुद्ध ही शुद्ध पाओगे।

अपने में दोष होता है तभी किसी के दोष का चिन्तन होता है। सबका मूल अपना आत्मकेन्द्र है। अपने को ठीक कर दिया तो सारा विश्व ठीक मिलेगा। अपने को ठीक कोई पद प्रतिष्ठा से, कायदा-कानून से, रूपये-पैसे से या चीज-वस्तुओं से थोड़े ही किया जाता है। कुविचारों से अपने को खराब कर दिया, अब सुविचारों से और सत्कृत्यों से अपने को ठीक कर दो। विचार जहाँ से उठते हैं उसमें ठहर गये तो परम ठीक हो गये।

जो लाभ हो गया सो हो गया, जो घाटा हो गया सो हो गया, जो बन गया सो बन गया, बिगड़ गया सो बिगड़ गया। संसार एक खिलवाड़ है। उसमें क्या आस्था करना? अपनी आत्ममस्ती नश्वर परिस्थितियों के लिए क्या त्यागना? तू तो भगवान शंकर की तरह बजा शंख और 'शिवोऽहं' के गीत गा।

अपने आपको ब्रह्ममय करते नहीं और दूसरों को सुधारने में लग जाते हैं। ब्रह्मदृष्टि करने के सिवा अपने वास्तविक कल्याण का और कोई चारा नहीं है। वैरी, विरोधी, शत्रुओं के दोषों को क्षमा करते इतनी देर भी न लगायें जितनी देर श्री गंगाजी तिनका बहाने में लगाती है। जब तक पदार्थों में समदृष्टि नहीं होती तब तक समाधि कैसी? 'समाधि' माने सम+धी। समान बुद्धि, समान दृष्टि।

सत्संग में रूचि नहीं होती तो सत्य में प्रतिष्ठा कैसी? विषयात्मक दृष्टिवाले को योग समाधि और ध्यान तो कहाँ, धारणा भी होनी असंभव है। समदृष्टि तब होगी जब लोगों के विषय में भलाई-बुराई की भावना उठ जाये। भलाई-बुराई की भावना दूर कैसे हो? लोगों को ब्रह्म से भिन्न मानकर अच्छे बुरे की जो कल्पना कर रखी है वह कल्पना न करें। समुद्र में जैसे तरंगें होती हैं कोई छोटी कोई बड़ी, कोई ऊँची कोई नीची, कोई तिरछी कोई सीधी, उन सब तरंगों की सत्ता समुद्र से अलग नहीं मानी जाती। उनका जीवन सागर के जीवन से भिन्न नहीं जाना जाता। इसी प्रकार भले बुरे आदमी, अमीर गरीब लोग तो उसी ब्रह्म-समुद्र की तरंगें हैं। सब में एक ही ब्रह्म-समुद्र हिलोरे ले रहा है।

जैसे छोटी-बड़ी तरंगे, फेन, बुदबुदे सब समुद्र से एक हैं ऐसे ही अच्छे बुरे, छोटे-बड़े, अपने पराये सब आत्म समुद्र की तरंगें हैं। ऐसी दृष्टि करने से सारे दुःख, शोक, चिन्ताएँ, खिंचाव, तनाव शान्त हो जाते हैं। राग-द्वेष की अग्नि बुझ जाती है। छाती में ठण्डक पड़ जाती है। रोम-रोम में आह्लाद आ जाता है। निगाहों में नूरानी नूर चमकने लगता है। आत्म विचार मात्र से तत्काल कल्याण हो जाता है। सारे दुःख, सारी चिन्ताएँ, सारे शोक, पाप, ताप, संताप उसी समय पलायन हो जाते हैं। सूर्योदय होता है तब अन्धकार पूछने को थोड़े ही बैठता है कि मैं जाऊँ या न जाऊँ। दिया जला तो अन्धकार छू.......। सूर्योदय हुआ तो रात्रि छू....। ऐसे ही आत्मज्ञान का प्रकाश होते ही अज्ञान और अज्ञानजनित सारे दुःख, शोक, चिन्ता, भय, संघर्ष आदि सारे दोष पलायन हो जाते हैं। व्यापक ब्रह्म को जो अपना आत्मा समझता है। उसके लिए देवता लोग भी बलि लाते हैं- **सर्वेऽस्मि देवा बलिमाहवन्ति।** (तैति. उप. 1.5.3) यक्ष, किन्नर, गन्धर्व उसकी चाकरी में लग जाते हैं। चीज वस्तुएँ उसकी सेवा में लगने के लिए एक दूसरे से स्पर्धा करती हैं। ऐसा ब्रह्मवेत्ता होता है।

जो तरंग सागर से ऊँची उठ गई है वह अवश्य वापस गिरेगी ही। इसी प्रकार जिस पुरुष में खोटापन घुस गया है उसे अवश्य दुःख पाना है। तरंगों के ऊँच और नीच भाव को प्राप्त होने पर भी समुद्र की सपाटी को क्षितिज धरातल ही माना जाता है। इसी तरह बीज रूप लोगों के कर्म और कर्मफल को प्राप्त होते रहने पर भी ब्रह्म रूपी समुद्र की समता में कोई फर्क नहीं पड़ता।

लहरों का तमाशा देखना भी सुखदायी और आनन्दमय होता है। जो पुरुष इन लहरों से भीग जाये या उसमें डूबने लगे तो उसके लिए उपद्रवरूप हैं। ऐसे ही कर्ता भोक्तापन से भीग गये तो तकलीफ उठानी पड़ेगी। निर्लेप साक्षी रहे आनन्द ही आनन्द है।

उपासना का प्राण समर्पण और आत्मदान है। इसके बिना उपासना निष्फल है, प्राण रहित है। भैया ! तब तक तुम अपनी खुदी और अहंकार परमेश्वर के हवाले न करोगे तब तक परमेश्वर तुम्हारे साथ कैसे बैठेंगे? वे तुम से दूर ही रहेंगे, जैसे भगवान कृष्ण कालयवन से दूर रहते थे।

कोई सोचे कि, 'चलो भजन-उपासना करके देखें, फल मिलता है या नहीं' – तो यह परीक्षा का भजन असंगत और असंभव है। यह भजन ही नहीं है। भजन, निष्कपट भजन तो वह है जिसमें भक्त अग्नि में आहूति की तरह फल और फल की इच्छा वाले अपने आपको परमेश्वर के हवाले कर देता है, पूर्ण समर्पित हो जाता है।

ॐ

बीते हुए समय को याद न करना, भविष्य की चिन्ता न करना

और वर्तमान में प्राप्त सुख-दुःख आदि में सम रहना ये जीवन्मुक्त पुरुष के लक्षण हैं।

ॐॐ

स्वातंत्र्य का मार्ग

इन्द्रियों पर और मन पर विजय पाने की चेष्टा करो। अपनी कमजोरियों से सावधान रहो। धीरज के साथ परमात्मा पर भरोसा रखकर इन्द्रियों को बुरे विषयों की ओर जाने से रोको। मन को प्रभु-चिन्तन या सत्-चिन्तन के कार्य में रोककर कुविषयों से हटाओ।

जब तुम्हारे शरीर, मन और वाणी-तीनों शुद्ध होकर शक्ति के भण्डार बन जायेंगे तभी तुम वास्तव में स्वतंत्र होकर महाशक्ति की सच्ची उपासना कर सकोगे और तभी तुम्हारा जन्म-जीवन सफल होगा। याद रखोः जिस पवित्रात्मा पुरुष के शरीर इन्द्रियाँ और मन अपने वश में हैं और शुद्ध हो चुके हैं वही स्वतन्त्र है। परंतु जो किसी भी नियम के अधीन न रहकर शरीर का इन्द्रियों का और मन का गुलाम बना हुआ मनमानी करना चाहता है, कर सकता है या करता है वह तो उच्छृंखल है। उच्छृंखलता से तीनों की शक्तियों का नाश होता है और वह फिर महाशक्ति की उपासना नहीं कर सकता। महाशक्ति की उपासना के बिना मनुष्य का जन्म-जीवन व्यर्थ है और पशु से भी गया-बीता है। अतएव शक्ति संचय करके स्वतंत्र बनो।

ॐ

वैभव का भूषण सृजनता है। वाणी का संयम अर्थात् अपने मुख से शौर्य-पराक्रम का वर्णन न करना शौर्य-पराक्रम की शोभा है। ज्ञान का भूषण शान्ति है। नम्रता शास्त्र के श्रवण को शोभा देती है। सत्पात्र को दान देना दान की शोभा है। क्रोध न करना तप की शोभा है। क्षमा करना समर्थ पुरुष की शोभा है। निष्कपटता धर्म को शोभा देती है।

ॐ

ब्रह्मचर्य रक्षाः रात्रि में दस ग्राम गोंद पानी में भिगो दें। सुबह उस गोंद का पानी लेने से वीर्यधातु पुष्ट होती है। ब्रह्मचर्य की रक्षा में सहायता मिलती है।

ॐॐॐ

अनुक्रम

इन्द्रिय-विजयः सुख व सामर्थ्य का स्रोत

अष्टावक्र महाराज ने जनक के दरबार में शास्त्रार्थ करके जब बन्दी को हरा दिया तो बन्दी वरुणलोक में भेजे हुए ब्राह्मणों को वापस लाये। अष्टावक्र के पिता कुहुल ब्रह्मण भी वापस लौट और उन्होंने अष्टावक्र को आशीर्वाद दिया।

समय बीतता गया। अष्टावक्र उमरलायक हुए। पिता के मन में वदान्य ऋषि की सुशील कन्या के साथ अष्टावक्र का विवाह करने का भाव आया। उन्होंने वदान्य ऋषि को कहाः "भगवन! आपकी सर्वगुण संपन्न, सुशील, कम बोलने वाली, विदुषी, शास्त्रों में प्रीतिवाली, मन एकाग्र करने में रूचिवाली, सच्चारित्र्यवती कन्या मेरे पुत्र अष्टावक्र को ब्याह दो हमें बहुत प्रसन्नता होगी।"

वदान्य ऋषि ने कहाः "हमारी दो शर्ते हैं। आपके सुपुत्र अष्टावक्र मुनि कैलास जाकर शिवजी का दर्शन करें और कुबेर के यहाँ अप्सरा, गन्धर्व, किन्नर, देव आदि नृत्य करते हैं, गायन करते हैं उनकी महफिल में रहें। उस सुहावनी महफिल में रहने के बाद भी अगर आपके पुत्र ब्रह्मचारी रहें, जितेन्द्रिय रहें तो दूसरी एक शर्त पर उन्हें सफल होना पड़ेगा।"

"हेमकूट पर्वत के पास एक सुन्दर सुहावना आश्रम है। उस आश्रम में योगिनियाँ रहती हैं। अति रूपलावण्यवती, आकर्षक चमक-दमक से युक्त हिलचाल करने वाली, प्रतिभासंपन्न उन योगिनियों के यहाँ कुछ समय तक अतिथि बनकर रहें फिर भी उनका ब्रह्मचर्य अखण्ड रहे, जितेन्द्रियता बनी रहे तो मैं अपनी कन्या अष्टावक्र को दान कर सकता हूँ।"

अष्टावक्र मुनि को पता चला। वे कैलास की ओर चल पड़े।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः।।

"सरदी-गरमी, सुख-दुःख, मान अपमान आदि में जिसके अन्तःकरण की वृत्तियाँ भली भाँति शान्त हैं, ऐसे स्वाधीन अन्तःकरण वाले पुरुष के ज्ञान में सच्चिदानन्द परमात्मा सम्यक प्रकार से स्थित हैं अर्थात् उसके ज्ञान में परमात्मा के सिवा अन्य कुछ है ही नहीं।"
(भगवदगीताः 6.7)

शीत-उष्ण, सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि द्वंद्वों से जो विचलित नहीं होता, आकर्षित नहीं होता वह जितेन्द्रिय पुरुष हर क्षेत्र में सफल होता है। आपमें जितनी जितेन्द्रियता होगी उतना आप में प्रभाव आयेगा। जितनी जितेन्द्रियता होगी उतना आन्तरिक सुख पाने की

शक्ति आयेगी। जितनी आन्तरिक शक्ति होगी उतना आप निष्फिकर होकर जियेंगे, निर्द्वन्द्व होकर जियेंगे, निर्बन्ध होकर जियेंगे। इसका मतलब यह नहीं है कि आपके सामने द्वन्द्व आयेंगे ही नहीं। सर्दी आयेगी, गर्मी आयेगी, मान आयेगा, अपमान आयेगा, यश आयेगा, अपयश आयेगा लेकिन पहले जो तिनके की तरह हिलडुल रहे थे, सूखे पत्ते की तरह झरझरा रहे थे वह अब नहीं होगा, अगर आप में जितेन्द्रियता आ गई तो।

दुनिया में सब सुविधा का सामग्रियाँ है लेकिन मन तुम्हारा एकाग्र नहीं है, जितेन्द्रियता के मार्ग पर आपने यात्रा नहीं की तो महाराज ! सब सुख-सुविधाएँ और बड़े आदमियों के साथ सम्बन्ध होते हुए भी अखबार पढ़कर, रेडियो सुनकर, टी.वी. देखकर अथवा किसी के दुःख-सुख या दरोड़े सुनकर भी दिन में न जाने कितनी बार तुम्हारी धड़कन तेज हो जायेगी। अगर मन और इन्द्रियों पर कुछ विजय पाई हुई है तो तुम विघ्न बाधाओं के बीच भी मजे से झूमोगे, खेलोगे। बाहर के साधन प्राणी का इतना हित नहीं कर पाते जितना उसके मन की एकाग्रता उसका हित करती है।

अष्टावक्र मुनि कैलास पहुँचे। कुबेर जी आये और अगवानी कर अपने आलीशान आलय में ले गये जहाँ यक्ष-यक्षिणियाँ, किन्नर-गन्धर्व खूब मजे का नाच-गान करते थे। अष्टावक्र मुनि उनके अतिथि हो गये, इरादेपूर्वक कई दिन रहे और खूब देखते रहे। बाद में उन्होंने आगे की यात्रा की। हेमकूट पर्वत की तरफ आये और महिलाओं के सुन्दर, सुहावने, भव्य आश्रम का बयान सुना था वहाँ पहुँचे। बाहर से आवाज लगायीः

"इस एकान्त, शान्त, सुहावने, रमणीय पुष्पवाटिकाओं में सजेधजे वातावरण में अति मनोरम्य जो आश्रम है, इस आश्रम में अगर कोई रहता हो तो मैं अष्टावक्र मुनि, कुहुल ब्राह्मण का पुत्र और उद्दालक ऋषि का दौहित्र अतिथि के रूप में आया हूँ। मुझे अपने आश्रम का अतिथि बनायें।"

एक बार कहा, दूसरी बार कहा और तीसरी बार जब दोहराया तो सात कन्याएँ रूप-लावण्य-ओज-प्रभाव से सजीधजी आईं और अष्टावक्र मुनि का अभिवादन करके उन्हें आश्रम के भीतर ले गईं। वहाँ तीर्थों का जल मँगवाकर सुवर्ण के रत्नजड़ित कलशों से अष्टावक्र मुनि को स्नान कराया, उनका पूजन किया। कथा कहती है कि अष्टावक्र मुनि को तमाम प्रकार के व्यंजन अर्पित करके पंखा डुलाते हुए, हास्य-विलास और इन्द्रियों में उत्तेजना पैदा करे ऐसा वातावरण उन्होंने तैयार किया।

अष्टावक्र मुनि भोजन कर रहे हैं, हँसने के समय हँस रहे हैं, लेकिन जिससे हँसा जाता है, उसका उन्हे पूरा ख्याल है। भोजन करते समय भोजन कर रहे हैं लेकिन जिसकी सत्ता से दाँत भोजन चबाते हैं उस सत्ता का पूरा स्मरण है। जैसे गर्भिणी स्त्री को आखिरी दिनों में रटना नहीं पड़ता कि मैं गर्भिणी हूँ। चलते-फिरते, हर कदम उठाते उसे स्मृति रहती है। ऐसे ही जो जितेन्द्रिय हैं, आत्मारामी हैं उनको हर कार्य करते हुए अपने स्वरूप की स्मृति रहती है। इसीलिए वे जितात्मा होते हैं।

'रही दुनिया में दुनिया खाँ रहे आजाद थो ज्ञानी।'

दुनिया में रहते हुए दुनिया से निराला। लोगों के बीच रहते हुए लोकेश्वर में। ऐसे मुनि व्यंजनो को परखकर खा रहे हैं। बहुत सुन्दर पकवान बनाये है। चटनी बहुत सुन्दर है। बहुत सुन्दर कहते समय भी जो 'परम सुन्दर है। उसी की खबर से ही सुन्दर कहा जा रहा है' यह मुनि को ठीक से याद है। पकवान अच्छे दिख रहे हैं। अच्छा दिख रहा है जिससे, उसको देखते हुए कह रहे हैं कि अच्छे दिख रहे हैं।

यह कथा मैं इसलिए कह रहा हूँ कि काश ! यह समझ तुम्हारे पास भी आ जाये तो आज की धुलेटी तुम्हारा बेड़ा पर कर सकती है। क्योंकि तुम भी तो खाओगे, जाओगे, आओगे, लेकिन खाने, जाने, आने के साथ-साथ जिससे खाया जाता है, जाया जाता है, आया जाता है उस प्यारे को अगर साथ में रखकर यह सब करोगे तो बेड़ा पार हो जायेगा।

मुनि ने तमाम प्रकार के व्यंजनो का रसास्वादन किया।

अज्ञानी आदमी काम छोड़कर सोता है, काम छोड़कर विलास में डूबता है और ज्ञानी काम निपटा कर मजा लेते हैं। अज्ञानी मूढ जिस काम को करने के लिए उसे मनुष्य जन्म मिला है वह काम छोड़कर संसार के व्यंजनों का उपभोग करने लग जाता है। उस बेचारे को पता नहीं कि उपभोग करते करते तेरा ही उपभोग हो रहा है। भर्तृहरि ठीक ही कह रहे हैं-

भोगा न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः
तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा।।

"भोग नहीं भोगे गये लेकिन हम ही भोगे गये। तप नहीं तपा लेकिन हम ही तप गये। समय नहीं गया लेकिन हम ही (मृत्यु की ओर) जा रहे हैं। तृष्णा क्षीण नहीं हुई लेकिन हम ही क्षीण हो गये।"

(वैराग्यशतक)

भोगों को तू क्या भोगता है, भोग तुझे भोग लेंगे। मिठाइयों को और माल को तू क्या चबाता है, माल-मिठाइयाँ तुझे जीर्ण-शीर्ण कर देंगी। दाँत निकल जायेंगे। 'बोखा काका' बन जायेगा भाई ! ज्यादा विषय विलास में अपना समय मत गँवा। अपने समय को जितात्मा होने में लगा दे।

अगर तू गाँठ बाँध ले, दृढ़ता के साथ छः महीने तक जितात्मा होने का अभ्यास करे तो महाराज ! तेरा जीवन इतना सुन्दर सुहावना हो जाये कि आज तक के बीते हुए जीवन पर तुझे हँसी आये कि नाहक मैं बरबाद हो रहा था, नाहक मैं अपने आपका शत्रु बन रहा था। केवल छः महीने। लेकिन छः महीने ऐसा नहीं कि थोड़ी देर कथा सुन ली, थोड़ी देर तमाम लोगों के सम्पर्क में रह लो, थोड़ी देर अखबार पढ़ लो, थोड़ी देर कुछ यह खा लो।

अष्टावक्र मुनि ने भी खाया था। खाया तो था पर कब खाया था? उन्होंने भी खूब नाच-गान देखे थे। देखे थे, जरूर देखे थे। उन्होंने तो रूबरू देखे थे। हम तो टी.वी. के ही देखते हैं। लेकिन रूबरू देखने पर भी उनके मन का पतन नहीं हुआ जबकि जवान टी.वी. के कुछ नाच-गान देखकर भी चलते-चलते और रात को उनकी क्या बर्बादी होती है उसका बयान करना मेरी जीभ की ताकत नहीं। ऐसे हो गये कि पड़ोस की बहन को बहन कहने लायक नहीं रहे, पड़ोस के भाई को भाई कहने लायक नहीं रहे। ऐसा अधःपतन हो जाता है मन का।

आप नाराज तो नहीं होते न? मैं आपको उलाहना नहीं दे रहा हूँ लेकिन आपको सजाग कर रहा हूँ। किसी के दोष बताकर, उसको तुच्छ बनाकर आप उसका कल्याण नहीं कर सकते। उसके दोष बता कर उसको प्यार करके महान् बताकर आप उसे महान् बना सकते हैं। 'ऐ लड़के! तू ऐसा है... वैसा है... तेरी यह गलती है.... वह गलती है.... तुझसे कुछ नहीं होगा....' ऐसा करके आप उसका विनाश कर रहे हो। उसमें काफी संभावना है महान् होने की। उलाहना देना हो तो मीठा उलाहना दो। अगर पराये होकर दोगे, उसे कुचलोगे तो उसकी बुद्धि भी बलवा करेगी, दिल खट्टा हो जायेगा। चाहे आपकी बात सच्ची हो लेकिन उस वक्त वह बेटा एक न मानेगा। 'अब नहीं करता जाओ, तुम्हे जो करना हो सो कर लो।' ऐसे सामने पड़ जायेगा।

जिस प्रकार संत पुरुष लोगों को मोड़ते हैं उसी प्रकार आप यदि कुटुम्बीजनों को, पड़ोसियों को मोड़ें तो आपकी गैरहाजिरी में भी वे लोग आपके बताये मार्ग पर चलते रहेंगे। संतों की अनुपस्थिति में भी तुम लोग जप-ध्यान करते हो कि नहीं? माला घुमाते हो कि नहीं? इसी प्रकार वे लोग भी आपकी बात मानेंगे।

उन सात सलोनी कुमारिकाओं ने अष्टावक्र मुनि को भोजन कराया। उस आश्रम की महिला ने भी कह रखा था कि मुनि आत्मवेत्ता है, अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हैं और जनक राजा जैसे इनके शिष्य हैं। जितनी हो सके उतनी सेवा करो। **ब्रह्मज्ञानी का दर्शन बड़भागी पावै।** जिनका दर्शन बड़े भाग्यवान को होता है, उनकी सेवा तुमको मिल रही है।

ब्रह्मज्ञानी का दर्शन बड़भागी पावै।
ब्रह्मज्ञानी को बल बल जावै।।
जे को जन्म मरण से डरे।
साध जनां की शरणी पड़े।।
जे का अपना दुःख मिटावै।
साध जनां की सेवा पावै।।

जो अपना दुःख मिटाना चाहता है वह आत्मज्ञानी संत महापुरुष की सेवा पा ले। उनके पैर दबाना ही सेवा नहीं लेकिन वे जैसे भी सन्तुष्ट और प्रसन्न होते हों वह सब कार्य करके भी आप सफल होते हैं तो आपने दुनिया में बड़े से बड़ा, ऊँचे से ऊँचा सौदा कर लिया। कोई एक का डेढ़ करता है, कोई एक का दो करता है, कोई चार करता है, अरे ! दस भी करता है लेकिन फिर भी यह धन्धा इतना फायदावाला नहीं। ब्रह्मवेत्ता के दिल को प्रसन्न करने के लिए आपने थोड़ा समय लगा दिया तो आपने बहुत लाभ पा लिया। आपने बहुत कमाई कर ली अपनी और ऐसी कमाई का निजी अनुभव है इसलिए आपसे कहता हूँ।

दुनियादारों को रिझाते रिझाते बाल सफेद हो जाते हैं और खोपड़ी घिस जाती है। फिर भी वह लाभ नहीं होता जितना लाभ एक ब्रह्मवेत्ता श्री लीलाशाह भगवान को रिझाने से हुआ है। यह मुझे प्रत्यक्ष ज्ञात है। श्री राम कृष्ण को नरेन्द्र ने रिझाया और नरेन्द्र को जो लाभ हुआ उसका बयान कैसे किया जाये ! नरेन्द्र बोलते हैं-

"मुझ से ज्यादा पढ़े-लिखे विद्वान पण्डित काशी में हैं और स्कूल-कालेजों में मुझे पढ़ाने वाले प्रोफेसरों के पास काफी सूचनाएँ और 'कोटेशन्स' हैं। भाइयों ! फिर भी मेरी वाणी सुनकर तुम गदगद होते हो और ईश्वर के रास्ते चल पड़ते हो, मुझे दिलोजान से प्यार करते हो तो मैंने अपने गुरुदेव को दिलोजान से प्यार किया है, इसी का यह नतीजा है। इसीलिए आप हजारों लोग मुझे प्यार कर रहे हो।"

ईशकृपा बिन गुरु नहीं गुरु बिना नहीं ज्ञान।
ज्ञान बिना आत्मा नहीं गावहिं वेद पुरान।।

अष्टावक्र मुनि की उन्होंने खूव सेवा की। रात्रि हुई। एक विशाल सुन्दर खण्ड सजाया गया। सुवर्ण का पलंग, रेशम के बिछौने, वस्त्र, फूल इत्र का छिड़काव। इत्र भी ये आज के 'परफ्यूम्स' आदि जो 'केमिकल्स' से बनते हैं वे नहीं। वे तो उत्तेजना पैदा करते हैं, हानिकारक हैं।

डॉ. डायमण्ड ने रिसर्च करके यन्त्रों द्वारा साबित कर दिया है कि 'परफ्यूम्स' आदि लगाने से जीवनशक्ति का ह्रास होता है। एड़ी वाले सेन्डल पहनने से जीवनशक्ति का ह्रास होता है। किसी के यश, मान, ऊँचाई देखकर ईर्ष्या, घृणा करना, किसी को गिराना आदि दोषकारक वृत्तियों से भी जीवन-शक्ति का ह्रास होता है। एक बीड़ी पीने से शरीर में बीस मिनट के अन्दर टार और निकोटिन नाम के जहर फैल जाते हैं। इतना ही नहीं, उस कमरे में जितने भी आदमी बैठे हों उन सबको वह हानि उतनी की उतनी मात्रा में होती है जितनी बीड़ी सिगरेट पीने वाले को होती है।

हम अष्टावक्र मुनि को नहीं भूलेंगे। मुनि शयनखण्ड में गये और उन सात सुन्दरियों ने भली प्रकार उनकी चरणचम्पी की। मुनि जब निद्राग्रस्त होने लगे तब कहाः "बहनों ! (क्या भारत के मुनि हैं ! हद दो गई !!) अब तुम अपनी जगह पर जाकर शयन करो। अगर वहाँ जगह कम हो तो जो वृद्धा अधिष्ठात्री हैं वे यहाँ शयन कर सकती हैं।"

वह वृद्धा आई। उन लड़कियों की अपेक्षा वह वृद्धा थी लेकिन वह बुढ़िया नहीं थी, शबरी की भाँति वृद्धा नहीं थी। वह महिला अपना पलंग सजा कर सो गई।

मुनि निद्राग्रस्त हुए। मध्यरात्रि को वह महिला अपने पलंग से उठी और मुनि के पलंग में सो गई। मुनि को आलिंगन करके अपने शरीर से उन्हे हेत करने लगी। लेकिन मुनि तो जहाँ से मन फुरता है, इन्द्रियों को विषयों में गिरने की सम्मति देनेवाली बुद्धि को जहाँ से सत्ता स्फूर्ति आती है उस परम सत्ता में विश्रान्ति पाये हुए हैं।

एक तो बाहर से आकर्षण आते हैं और दूसरे भीतर से आकर्षण पैदा होते हैं। भीतर से आकर्षण तब पैदा होते है जब आकर्षित करनेवाले पदार्थों के किसी जन्म के संस्कार भीतर पड़े हैं। इसलिए भीतरी आकर्षण होता है। बाहर से आकर्षण तब होता है जब बाहर कोई निमित्त बनता है। ये दोनों, भीतर का आकर्षण और बाहर का आकर्षण, होते हैं मन में। मन जब इन्द्रियों के पक्ष में होता है और बुद्धि कमजोर होती है तो बुद्धि मन के सुझाव पर हस्ताक्षर कर देती है। बुद्धि अगर हस्ताक्षर न करे तो मन आकर्षक पदार्थों की ओर फिसल नहीं सकता। बुद्धि अगर हस्ताक्षर करती है तो मन आकर्षक पदार्थों एवं परिस्थितियों में गिरता है। बुद्धि अगर दृढ़ है तो मन नहीं गिरता।

जिन्होंने दृढ़ तत्त्व का साक्षात्कार किया है और परीक्षा से उत्तीर्ण होना है ऐसी जिनकी खबरदारी है ऐसे अष्टावक्र मुनि को वह महिला आलिंगन करके बाहों में लेकर इधर से उधर डुलाती है, उधर से इधर हिलाती है लेकिन मुनि प्रगाढ़ निद्रा में हैं ऐसा एहसास उसे करा रहे हैं। आखिर जब उस महिला ने थोड़ी अतिशयता की तब मुनि ने आँखें खोलीं और बोलेः

"माता ! तू कितनी देर से मुझे अपनी गोद में खेला रही है ! माँ, मेरी नींद टूट गई है।"

महिला बोलीः "माँ माँ क्या करते हो? मैं तुम्हारा यौवन, तुम्हारी प्रसन्नता, तुम्हारी निष्ठा, तुम्हारा आन्तरिक सौन्दर्य देखकर काम से पीड़ित हो रही हूँ। मैंने इतनी तुम्हारी सेवा करवाई तो तुम मेरी इतनी इच्छा पूरी करो।"

मुनि बोलेः "उन बच्चियों को मैंने बहन माना है। तुमको मैं माता मान रहा हूँ। माता ! मुझे आशीर्वाद दो कि मैं वदान्य ऋषि की परीक्षा में सफल हो जाऊँ।"

महिला ने उधर इधर की बातें कर के फिर फिसलाने की चेष्टा की पर मुनि अन्दर से दृढ़ थे। आखिर उस महिला ने अपना रूप प्रकट किया और कहाः "मैं साधारण महिला नहीं हूँ। मैं उत्तर दिशा की अधिष्ठात्री देवी हूँ। ये मेरी परिचारिकाएँ हैं। मुनि तुम धन्य हो।"

अष्टावक्र घर लौट आये और नियमानुकूल विवाह कर गृहस्थाश्रम में समय बिताने लगे। अष्टावक्र के इन्द्रिय-विजयी होने से ही उनके तीर्थ में तर्पणादि करने से नरमेध यज्ञ का पुण्य होता है।

ॐ

जो वासना से है बंधा, सो मूढ बन्धन युक्त है।
निर्वासना जो हो गया, सो धीर योगी मुक्त है।
भव वासना है बाँधती, शिव-वासना है छोड़ती।
सब बन्धनों को तोड़कर, शिव शांति से है जोड़ती।।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

जाग मुसाफिर

बल्ख बुखारा का शेख वाजिद अली 999 ऊँटों पर अपना बावर्चीखाना लदवा कर जा रहा था। रास्ता सँकरा था। एक ऊँट बीमार होकर मर गया। उसके पीछे आने वाले ऊँटों की कतार

रुक गई। 'ट्राफिक जाम' हो गया। शेख वाजिद ने कतार रुकने का कारण पूछा तो आदमी ने बतायाः

"हजूर ! ऊँट मर गया है। रास्ता सँकरा है। आगे जा नहीं सकते।"

शेख को आश्चर्य हुआः " ऊँट मर गया ! मरना कैसा होता है?"

वह अपने घोड़े से नीचे उतरा। चलकर आगे आया। सँकरी गली में मरे हुए ऊँट को गौर से देखने लगाः

"अरे ! इसका मुँह भी है, गरदन और पैर भी मौजूद हैं, पूँछ भी है, पेट और पीठ भी है तो यह मरा कैसै?"

उस विलासी शेख को तो पता ही नहीं कि मृत्यु क्या होती है। उस आदमी ने समझायाः "जहाँपनाह ! इसका मुँह, गरदन, पैर, पूँछ पेट, पीठ आदि सब कुछ है लेकिन इसमें जो जीवन है उसका 'कनेक्शन कट आउट' हो गया है, प्राण पखेरु उड़ गये हैं।"

"तो...... अब यह नहीं चलेगा क्या?"

"चलेगा कैसे। यह सड़ जाएगा, गल जायेगा, मिट जायेगा। जमीन में दफन हो जायेगा या गीध, चीलें, कौवे, कुत्ते इसको खा जायेंगे।"

"ऐसा ऊँट मर गया ! मौत ऐसे होती है।"

"हजूर ! मौत अकेले ऊँट की ही नहीं, बल्कि सबकी होती है हमारी भी मौत हो जायेगी।"

"......और मेरी भी?"

"शाहे आलम ! मौत सबकी होती ही है।"

ऊँट की मृत्यु देखकर शेख वाजिदअली के चित्त को झकझोरता हुआ वैराग्य का तूफान उठा। युगों से और जन्मों से प्रगाढ़ निद्रा में सोया हुआ आत्मदेव अब ज्यादा सोना नहीं चाहता था। 999 ऊँटों पर अपना सारा रसोईघर, भोगविलास की साधन-सामग्रियाँ लदवाकर नौकर-चाकर-बावर्ची-सिपाहियों के साथ जा रहा था, उन सबको छोड़कर उस सम्राट ने अरण्य का रास्ता पकड़ लिया, वह फकीर हो गया। उसके हृदय से आर्जव भरी प्रार्थना उठीः ' हे खुदा ! हे परवरदिगार ! हे जीवनदाता ! यह शरीर कब्रस्तान में दफनाया जाये, सड़ जाये, गल जाये उसके पहले तू मुझे अपना बना ले मालिक !"

शेख वाजिद के जीवन में वैराग्य की ज्योति ऐसी जली कि उसने अपने साथ कोई सामान नहीं रखा। केवल एक मिट्टी की हाँडी साथ में रखी। उसमें भिक्षा माँग कर खाता था, उसी से पानी पी लेता था। उसी को सिरहाना बनाकर सो जाता था। इस प्रकार बड़ी विरक्तता से जी रहा था।

अधिक वस्तुएँ पास रखने से वस्तुओं का चिन्तन होता है, उनके अधिष्ठान आत्मदेव का चिन्तन खो जाता है, साधक का समय व्यर्थ बिगड़ जाता है। एक बार वाजिदअली हाँडी का सिरहाना बना कर दोपहर को सोया था। कुत्ते को भोजन की सुगन्ध आई तो हाँडी को सूँघने लगा, मुँह डाल कर चाटने लगा। उसका सिर हाँडी के संकरे मुँह में फँस गया। वह क्याऊँ...... क्याऊँ.... करके हाँडी सिर के बल खींचने लगा। फकीर की नींद खुली। वह उठ बैठा तो वह कुत्ता हाँडी के साथ भागा। दूर जाकर सिर पटका तो हाँडी फूट गई ! शेख वाजिद कहने लगाः

"यह भी अच्छा हुआ। मैंने पूरा साम्राज्य छोड़ा, भोग वैभव छोड़े, 999 ऊँट, घोड़े, नौकर, चाकर, बावर्ची आदि सब छोड़े और यह हाँडी ली। हे प्रभु ! तूने यह हाँडी भी छुड़ा ली क्योंकि अब तू मुझसे मिलना चाहता है। प्रभु तेरी जय हो!

अब पेट ही हाँडी बन जायेगा और हाथ ही सिरहाने का काम देगा। जिस देह को दफनाना है उसके लिए हाँडी भी कौन संभालता है? जिससे सब संभाला जाता है उसकी मुहब्बत को अब सँभालूँगा।

आदमी को लग जाये तो ऊँट की मौत भी वैराग्य जगा देती है। अन्यथा तो कम्बख्त लोग पिता को स्मशान में जलाकर घर आकर सिगरेट सुलगाते हैं। अभागे लोग माँ को स्मशान में पहुँचा कर वापस आकर वाइन पीते हैं। उनके जीवन में वैराग्य नहीं जगता, ईश्वर का मार्ग नहीं सूझता।

तुलसी पूर्व के पाप से हरिचर्चा न सुहाय।
जैसे ज्वर के जोर से भूख विदा हो जाय।।

पूर्व के पाप जोर करते हैं तो हरिचर्चा में रस नहीं आता। जैसे बुखार जोर पकड़ता है तो भूख मर जाती है।

हरिचर्चा में, ईश्वर-स्मरण में, ध्यान-भजन-कीर्तन-सत्संग में रस न आये तो भी वह बार बार करता रहे, सत्संग सुनता रहे। समय पाकर पाप पलायन हो जायेंगे और भीतर का रस शुरु हो जायेगा। जैसे जिह्वा में कभी सूखा रोग हो जाता है तो मिसरी भी मीठी नहीं लगती। तब वैद्य लोग इलाज बताते हैं कि मिसरी मीठी न लगे फिर भी चूसो। वही इस रोग का इलाज है। मिसरी चूसते चूसते सूखा रोग मिट जायगा और मिसरी का स्वाद आने लगेगा।

इसी प्रकार पापों के कारण मन ईश्वर-चिन्तन में, राम नाम में न लगता हो फिर भी राम नाम जपते जाओ, सत्संग सुनते जाओ, ईश्वर चिन्तन में मन लगाते जाओ। इससे पाप कटते जायेंगे और भीतर का ईश्वरीय आनन्द प्रगट होता जायेगा।

अभागा तो मन है तुम अभागे नहीं हो। तुम सब तो पवित्र हो, भगवत स्वरूप हो। तुम्हारा पापी अभागा मन अगर तुम्हें भीतर का रस न भी लेने दे, फिर भी रामनाम के जप में, कीर्तन में, ध्यान-भजन में, संत-महात्मा के सत्संग समागम में बार-बार जाकर हरिरस रूपी मिसरी चूसते रहो। इससे पाप रूपी सूखा रोग मिटता जायगा और हरि रस की मधुरता हृदय में खुलती जायेगी। तुम्हारा बेड़ा पार हो जायेगा।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

आत्म-कल्याण में विलम्ब क्यों?

किसी भी कर्म का फल शाश्वत नहीं है। पुण्य का फल भी शाश्वत नहीं और पाप का फल भी शाश्वत नहीं। केवल ज्ञान का फल, परमात्म-साक्षात्कार का फल ही शाश्वत है, दूसरा कुछ शाश्वत नहीं है।

पुण्य का फल सुख भोगकर नष्ट हो जाता है। पाप का फल दुःख भोगने से नष्ट हो जाता है। इसीलिए शास्त्रकारों ने कहाः "पुण्य का फल ईश्वर को समर्पित करने से हृदय शुद्ध होता है। शुद्ध हृदय में शुद्ध स्वरूप को पाने की जिज्ञासा जगती है। शुद्ध स्वरूप को पाने की जिज्ञासा जगती है तब वेदान्त-वचन पचते हैं।

किसी व्यक्ति ने कुछ कार्य किया। उसको ज्यों का त्यों जाना तो यह सामाजिक सत्य है, परम सत्य नहीं है। परम सत्य किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के इर्दगिर्द नहीं रहता। उस सत्य में तो अनन्त अनन्त व्यक्ति और ब्रह्माण्ड पैदा हो होकर लीन हो जाते हैं, फिर भी उस सत्य में एक तिनका भर भी हेरफेर या कटौती-बढ़ौती नहीं होती। वही परम सत्य है। उस परम सत्य को पाने के लिए ही मनुष्य जन्म मिला है।

इस प्रकार का दिव्य ज्ञान पाने का जब तक लक्ष्य नहीं बनता है तब तक किसी न किसी अवस्था में हमारा मन रुक जाता है। किसी न किसी अवस्था में हमारी बुद्धि स्थगित हो जाती है, कुण्ठित हो जाती है।

अवस्था अच्छी या बुरी होती है। जहाँ अच्छाई है वहाँ बुराई भी होगी। जहाँ बुराई है वहाँ अच्छाई की अपेक्षा है। बुरे की अपेक्षा अच्छा। अच्छे की अपेक्षा बुरा। लेकिन अच्छा और बुरा,

यह सारा का सारा शरीर को, अन्तःकरण को, मन को बुद्धि को, 'मैं' मान कर होता है। हकीकत में ये अन्तःकरण, मन, बुद्धि 'मैं' है ही नहीं। असली 'मैं' को नहीं जानते इसलिए हर जन्म में नया 'मैं' बनाते हैं। इस नये 'मैं' को सजाते हैं। हर जन्म के इस नये 'मैं' को आखिर में जला देते हैं।

असली 'मैं' की अब तक जिज्ञासा जगी नहीं तब तक मानी हुई 'मैं' को सँभालकर, सँवार कर, बचाकर, जीवन घिस डालते हैं हम लोग। मानी हुई 'मैं' की कभी वाह वाह होगी कभी निन्दा होगी। 'मैं' कभी निर्दोष रहेगा कभी दोषी बनेगा, कभी काम विकार में गिरेगी, कभी निष्काम होगी। मानी हुई 'मैं' तो उछलती, कूदती, डिमडिमाती, धक्के खाती, अन्त में स्मशान में खत्म हो जायेगी। फिर नये जन्म की नई 'मैं' सर्जित होगी। ऐसा करते यह प्राणी अपने असली 'मैं' के ज्ञान के बिना अनन्त जन्मों तक दुःखों के चक्र में बेचारा घूमता रहता है। इसीलिए गीताकार ने कहा हैः

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

'ज्ञान के समान पवित्र करने वाली और कोई चीज नहीं।' (गीताः4.38)

जब अपनी असलियत का ज्ञान मिलता है तब बेड़ा पार होता है। बाकी तो छोटी अवस्थाओं से बड़ी अवस्थाएँ आती हैं। बड़ी अवस्थाओं से और बड़ी अवस्थाएँ आती हैं। इन अवस्थाओं का सुख-दुःख अन्तःकरण तक सीमित रहता है।

अवस्था का सुख देह से एक होकर मिलता है, लेकिन सत्य का साक्षात्कार जब देह से एक होना भूलते हैं और परमात्मा से एक होते हैं तब होता है, तब असली सुख मिलता है। शरीर से एक होते हैं तब माया का सुख मिलता है, नश्वर सुख मिलता है और वह सुख शक्ति को क्षीण करता है। परमात्मा से जब एक होकर मिलते हैं, जितनी देर परिच्छिन्न 'मैं' भूल जाते हैं उतनी देर दिव्य सुख की झलकें आती हैं। चाहे भक्ति के द्वारा चाहे योग के द्वारा, चाहे तत्त्वविचार के द्वारा परिच्छिन्न 'मैं' भूलकर परमात्मा से एक होते हैं तो परम सुख की झलकें आती हैं। फिर जब परिच्छिन्न 'मैं' स्मरण में आता है तो आदमी शुद्ध सुख से नीचे आ जाता है।

जितने प्रमाण में इन्द्रियगत सुख है, बाहर का आकर्षण है उतने प्रमाण में जीवन नीचा है, छोटा है। लोगों की नज़र में हम चाहे कितने ही ऊँचे दिख जायें लेकिन जितना इन्द्रियगत सुख का आकर्षण है, प्रलोभन है उतना हमारा जीवन पराधीन रहेगा, नीचा रहेगा। जितना जितना दिव्य सुख की तरफ ज्ञान है, समझ में उतने हम वास्तविक जीवन की ओर होंगे, हमारा जीवन उतना ऊँचा होगा।

ऊँचा जीवन पाना कठिन नहीं है। फिर भी बड़ा कठिन है।

मैंने सुनी है एक घटना। वरराजा की बारात ससुराल पहुँची और सास वरराजा को पोंखने (तिलक करने) लगी। उस समय नागा साधुओं की जमात उधर आ निकली। पुरानी कहानी है। अनपढ़ लोग थे। ऐसे ही थे जरा विचित्र स्वभाव के। साधुओं ने पूछाः

"यह माई लड़के को तिलक विलक कर रही है, क्या बात है?"

किसी ने बतायाः "यह दूल्हे का पोंखणा हो रहा है।"

नागाओं को भी पुजवाने की इच्छा हुई। एक नागा दूल्हे को धक्का मारकर बैठ गया पाट और बोलाः

"हो जाये महापुरुषों का पोखणा।"

उसका पोंखणा हुआ न हुआ और दूसरा नागा आगे आया। पहले को धक्का देकर स्वयं पाट पर बैठ गया।

"हो जाये महापुरुषों का पोंखणा।"

इसी प्रकार तीसरा........ चौथा.......... पाँचवाँ........ नागा साधुओं की लाईन लग गई। दूल्हा तो बेचारा एक ओर बैठा रहा और 'हो जाये महापुरुषों का पोंखणा..... हो जाये महापुरुषों का पोंखणा.....' करते करते पूरी रात हो गई। दूल्हे की शादी का कार्यक्रम लटकता रह गया।

ऐसे ही इस जीव का ईश्वर के साथ मिलन कराने वाले सदगुरु जीव को ज्ञान को तिलक तो करते हैं लेकिन जीव के अन्दर वे नंगी वृत्तियाँ, संसार-सुख चाहने वाली वृत्तियाँ आकर पाट पर बैठ जाती हैं। 'यह इच्छा पूरी हो जाये... वह इच्छा पूरी हो जाये....!' जीव बेचारा इन इच्छाओं को पूरी करते-करते लटकता रह जाता है।

नागा साधुओं की जमात तो फिर भी चली गई होगी। लेकिन हमारी तुच्छ वृत्तियाँ, तुच्छ इच्छाएँ आज तक नहीं गई। इसीलिए जीव-ब्रह्म की एकता की विधि लटकती रह जाती है। उस दूल्हे को तो एक रात शादी के बिना लटकते रहना पड़ा होगा लेकिन हम जैसे हजारों लोगों को युगों युगों से 'पोंखानेवाले' विचार, वृत्तियाँ, इच्छाएँ परेशान कर रही हैं। तो अब कृपा करके इन सब पोंखने वालों को तिलांजली दे दो।'

'यह हो जाये.... वह हो जाये..... फिर आराम से भजन करूँगा। इतना हो जाये फिर भजन करुँगा....।' आप जानते नहीं कि भजन से ज्यादा आप संसार को मूल्य दे रहे हैं। भजन का मूल्य आपने जाना नहीं। 'इतना पाकर फिर पिया को पाऊँगा' – तो पिया को पाने की महत्ता आपने जानी नहीं। क्यों नहीं जानी? क्योंकि वे आ गये, 'हो जाये पोंखणा' वाले विचार बीच में।

ॐ

प्रार्थना और पुकार से भावनाओं का विकास होता है, प्राणायाम से प्राण बल बढ़ता है, सेवा से क्रियाबल बढ़ता है और सत्संग से समझ बढ़ती है। ऊँची समझ से सहज समाधि अपना स्वभाव बन जाता है।

तुम जितने अंश में ईश्वर में तल्लीन होगे उतने ही अंश में तुम्हारे विघ्न और परेशानियाँ अपने-आप दूर हो जायेंगी और जितने तुम अहंकार में डूबे रहोगे उतने ही दुःख, विघ्न और परेशानियाँ बढ़ती जायेंगी।

पूरे विश्व का आधार परमात्मा है और वही परमात्मा आत्मा के रूप में हमारे साथ है। उस आत्मा को जान लेने से सबका ज्ञान हो जाता है।

रात्रि का प्रथम प्रहर भोजन, विनोद और हरिस्मरण में बिताना चाहिए। दो प्रहर आराम करना चाहिए और रात्रि का जो चौथा प्रहर है, उसमें शरीर में रहते हुए अपने अशरीरी स्वभाव का चिन्तन करके ब्रह्मानंद का खजाना पाना चाहिए।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐ

परहित में निहित स्वहित

पार्वती ने तप करके भगवान शंकर को प्रसन्न किया, संतुष्ट किया। शिवजी प्रकट हुए और पार्वती के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया। वरदान देकर अन्तर्धान हो गये। इतने में थोड़े दूर सरोवर में एक मगर ने किसी बच्चे को पकड़ा। बच्चा रक्षा के लिए चिल्लाने लगा। पार्वती ने गौर से देखा तो वह बच्चा बड़ी दयनीय स्थिति में है। "मुझ अनाथ को बचाओ.... मेरा कोई नहीं... बचाओ.... बचाओ....।" वह चीख रहा है, आक्रन्द कर रहा है।

पार्वती का हृदय द्रवीभूत हो गया। वह पहुँची वहाँ। सुकुमार बालक का पैर एक मगर ने पकड़ रखा है और घसीटता हुआ लिये जा रहा है गहरे पानी में। बालक क्रन्दन कर रहा हैः "मुझ निराधार का कोई आधार नहीं। न माता है न पिता है। मुझे बचाओ.... बचाओ.... बचाओ.....।'

पार्वती कहती हैः हे ग्राह ! हे मगरदेव ! इस बच्चे को छोड़ दो।"

मगर बोलाः "क्यों छोड़ूँ? दिन के छठे भाग में मुझे जो आ प्राप्त हो वह अपना आहार समझकर स्वीकार करना, ऐसी मेरी नियती है। ब्रह्माजी ने दिन के छठे भाग में मुझे यह बालक भेजा है। अब मैं इसे क्यों छोड़ूँ?"

पार्वती ने कहाः "हे ग्राह ! तुम इसको छोड़ दो। बदले में जो चाहिए वह मैं दूँगी।"

"तुमने जो तप किया और शिवजी को प्रसन्न करके वरदान माँगा, उस तप का फल अगर तुम मुझे दे दो तो मैं बच्चे को छोड़ दूँ।" ग्राह ने शर्त रखी।

"बस इतना ही? तो लोः केवल इस जीवन में इस अरण्य में बैठकर तप किया इतना ही नहीं लेकिन पूर्व जीवनों में जो कुछ तप किये हैं उन सब का फल, वे सब पुण्य मैं तुमको दे रही हूँ। इस बालक को छोड़ दो।"

"जरा सोच लो। आवेश में आकर संकल्प मत करो।"

"मैंने सब सोच लिया है।"

पार्वती ने हाथ में जल लेकर अपनी तमाम तपस्या का पुण्य फल ग्राह को देने का संकल्प किया। तपस्या का दान देते ही ग्राह का तन तेजस्विता से चमक उठा। उसने बच्चे को छोड़ दिया और कहाः

"हे पार्वती ! देखो ! तुम्हारे तप के प्रभाव से मेरा शरीर कितना सुन्दर हो गया है ! मैं कितना तेजपूर्ण हो गया हूँ ! मानो मैं तेज पुञ्ज बन गया हूँ। अपने सारे जीवन की कमाई तुमने एक छोटे-से बालक को बचाने के लिए लगा दी?"

पार्वती ने जवाब दियाः "हे ग्राह ! तप तो मैं फिर से कर सकती हूँ लेकिन इस सुकुमार बालक को तुम निगल जाते तो ऐसा निर्दोष नन्हा-मुन्ना फिर कैसे आता?"

देखते ही देखते वह बालक और ग्राह दोनो अन्तर्धान हो गये।

पार्वती ने सोचाः मैंने अपने सारे तप का दान कर दिया। अब फिर से तप करूँ। वह तप करने बैठी। थोड़ा सा ही ध्यान किया और देवाधिदेव भगवान शंकर प्रकट हो गये और बोलेः

"पार्वती ! अब क्यों तप करती हो?"

"प्रभु ! मैंने तप का दान कर दिया इसलिए फिर से तप रही हूँ।"

"अरे सुमुखी ! ग्राह के रूप में भी मैं था और बालक के रूप में भी मैं ही था। तेरा चित्त प्राणी मात्र में आत्मीयता का एहसास करता है कि नहीं यह परीक्षा लेने के लिए मैंने यह लीला की थी। अनेक रूपों में दिखने वाला मैं एक का एक हूँ। अनेक शरीरों में शरीर से न्यारा अशरीरी आत्मा हूँ। मैं तुझसे संतुष्ट हूँ।"

परहित बस जिनके मन मांहीं।

तिनको जग कछु दुर्लभ नाहीं।

अनुक्रम

सच्चा धनी

रवीन्द्रनाथ टैगोर जापान गये हुए थे। दस दिन तक हररोज शाम को 6 से 7 बजे तक उनकी गीताँजली पर प्रवचनों का कार्यक्रम था। लोग आकर बैठते थे। उनमें एक बूढ़ा भी आता था। वह बड़े प्यार से, अहोभाव से गुलाब की माला महर्षि के गले में पहनाता था। प्रतिदिन सभा के लोग आये उससे पहले आता था और कथा पूरी हो जाये, टैगोर खड़े हो जायें बाद में उठता था – ऐसा शील, शिष्टाचार उसके जीवन में था। जैसे एक निपुण जिज्ञासु अपने गुरुदेव के प्रति निहारे ऐसे वह टैगोर की तरफ निहार कर एक-एक शब्द आत्मसात करता था। साधारण कपड़ों में वह बूढ़ा टैगोर के वचनों से बड़ा लाभान्वित हो रहा था। सभा के लोगों को ख्याल भी नहीं आता था कि कौन कितना खजाना लिये जा रहा है।

एक घण्टे के बाद रवीन्द्रनाथ जब कथा पूरी करते तो सब लोग धन्यवाद देने के लिए, कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए नजदीक आकर उनके पैर छूते।

जो लोग फैशनेबल होकर कथा के चार शब्द सुनकर रवाना हो जाते हैं उनको पता ही नहीं कि वे अपने जीवन का कितना अनादर करते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने सांदीपनि ऋषि के चरणों में रहकर सेवा सुश्रुषा की है। श्रीरामचन्द्रजी ने वशिष्ठ मुनि के चरणों में इस आत्मविद्या के लिए अपने बहुमूल्य समय और बहुमूल्य पदार्थों को न्योछावर कर दिया।

टैगोर के चरणों में वह बूढ़ा प्रतिदिन नमस्कार करता। कथा की पूर्णाहुति हुई तो लोगों ने मंच पर सुवर्ण मुद्राएँ, येन (वहाँ के रूपये), फूल, फल आदि के ढेर कर दिए। वह बूढ़ा भी आया और बोलाः

"मेरी विनम्र प्रार्थना है कि कल आप मेरे घर पधारने की कृपा करें।"

बूढ़े के विनय-संपन्न आचरण से महर्षि प्रसन्न थे। उन्होंने भावपूर्ण निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। बूढ़े ने कहाः "आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार की है इसलिए मैं बहुत आभारी हूँ। खूब प्रसन्न हूँ...।" आँखों में हर्ष के आँसू छलकाते हुए वह विदा हुआ।

महर्षि ने अपने रहस्यमंत्री से कहाः "देखना ! वह बूढ़ा बड़ा भावनाशील है। मेरे प्रति उसकी गहरी श्रद्धा है। हमारे स्वागत की तैयारी में वह कहीं ज्यादा खर्च न कर बैठे। बाद में

आर्थिक बोझा उसको कष्ट देगा। दो सौ येन उसके बच्चों को दे देना। कल चार बजे हम उसके घर चलेंगे।"

दूसरे दिन पौने चार बजे उस बूढ़े ने रोल्स रोयस गाड़ी लाकर खड़ी कर दी। गुलाब के फूलों से सजी हुई भव्य गाड़ी देखकर रवीन्द्रनाथ ने सोचा किः "किराये पर गाड़ी लाया होगा। कितना खर्च किया होगा !"

महर्षि गाड़ी में बैठे। रोल्स रोयस गाड़ी उठी। बिना आवाज के झूमती आगे बढ़ी। एक ऊँची पहाड़ी पर विशाल महल के गेट पर पहुँची। चपरासी ने सलाम मारते हुए गेट खोला। गाड़ी भीतर प्रविष्ट हुई। महल में से कई भद्र पुरुष, महिलाएँ, लड़के, लड़कियाँ आकर टैगोर का अभिवादन करने लगे। वे उन्हें भीतर ले गये। सोने की कुर्सी पर रेशमी वस्त्र बिछा हुआ था वहाँ बिठाया। सोने-चाँदी की दो सौ प्लेटों में भिन्न-भिन्न प्रकार के मेवे-मिठाई परोसे गये। परिवार के लोगों ने आदर से उनका पूजन किया और चरणों में बैठे।

रवीन्द्रनाथ चकित हो गये। बूढ़े से बोलेः "आखिर तुम मुझे कहाँ ले आये? अपने घर ले चलो न? इन महलों से मुझे क्या लेना देना?"

सादे कपड़ों वाले उस बूढ़े ने कहाः "महाराज ! यह मकान मेरा है। हम जो रोल्स रोयस गाड़ी में आये वह भी मेरी है और ऐसी दूसरी पाँच गाड़ियाँ हैं। ऐसी सोने की दो कुर्सियाँ भी हैं। ये लोग जो आपको प्रणाम कर रहे हैं वे मेरे पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र हैं। यह मेरे बेटों की माँ है। ये चार उसकी बहुएँ है। स्वामी जी मेरी दो मिलें हैं।"

"ओहो ! तो तुम इतने धनाढय हो फिर भी ऐसे सादे, गरीबों के जैसे कपड़ों में वहाँ आकर बैठते थे !"

"महाराज ! मैं समझता हूँ कि यह बाहर का सिंगार और बाहर का धन कोई वास्तविक धन नहीं है। जिस धन से आत्मधन न मिले उस धन का गर्व करना बेवकूफी है। वह धन कब चला जाये कोई पता नहीं। परलोक में इसका कोई उपयोग नहीं इसलिए इस धन का गर्व करके कथा में आकर बैठना कितनी नासमझी है? और इस धन को सँभालते-सँभालते जो सँभालने योग्य है उसको न सँभालना कितनी नादानी है?

महाराज ! ज्ञान के धन के आगे, भक्ति के धन के आगे यह मेरा धन क्या मूल्य रखता है? यह तो मुझसे मजदूरी करवाता है, लेकिन जब से आपके चरणों में बैठा हूँ और आपने जो आत्मधन दिया है वह धन तो मुझे सँभालता है। बाह्य धन मुझसे अपने को सँभलवाता है। सच्चा

धन तो आत्मधन है जो मेरा रक्षण करता है। मैं सचमुच कृतज्ञ हूँ सदा के लिए आपका खूब आभारी रहूँगा। जीवनभर बाह्य धन को कमाने और सँभालने में मैंने अपने को नोंच डाला फिर भी जो सुख व शान्ति नहीं मिली वह आपके एक-एक घण्टे से मुझे मिलती गई। बाहर के वस्त्रालंकार को तुच्छ समझे और सादे कपड़े पहनकर, फटे चीथड़े पहनकर, कंगाल की भाँति आपके द्वारा पर भिखारी होकर बैठा और आध्यात्मिक धन की भिक्षा मैंने पाई है। हे दाता ! मैं धन्य हूँ।"

रवीन्द्रनाथ टैगोर का चित्त प्रसन्न हो गया।

जहाँ ज्ञान का आदर होता है वहाँ जीवन का आदर होता है। जहाँ ब्रह्मविद्या का आदर होता है वहाँ जीवन का आदर होता है, लक्ष्मी सुखदायी बनती है और स्थिर रहती है।

महर्षि बोलेः "सेठ ! बाह्य धन में ममता नहीं और भीतरी धन का आदर है इसलिए तुम वास्तव में सेठ हो। मैं भी आज धन्य हुआ। तुम्हारे जैसे भक्त के घर आकर मुझे महसूस हुआ कि मेरा कथा-प्रवचन करना सार्थक हुआ।

कई जगह जाते हैं तो लोग माँगते हैं। 'यह खपे.... वह खपे....' करके अपने को भी खपा देते हैं और हमारा समय भी खपा देते हैं। लेकिन तुम बुद्धिमान हो। नश्वर धन की माँग नहीं फिर भी दाता तुम्हें नश्वर धन दिये जा रहा है और शाश्वत धन की तुम्हारी प्यास भी बुझाने के लिए मुझे यहाँ भेज दिया होगा।"

धन वैभव होते हुए भी उसमें आस्था या आसक्ति न करे लेकिन जिससे सारा ब्रह्माण्ड और विश्व है उस विश्वेश्वर के वचन सुनकर, संत-महात्मा के चरणों में बैठकर, अपने अहं को गलाकर आत्मा के अनुभव में अपना जीवन धन्य कर ले, वही सच्चा धनवान है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐ

हे मानव ! तुझमें अपूर्व शक्ति, सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द, साहस छुपा है। घृणा, उद्वेग, ईर्ष्या, द्वेष और तुच्छ वासनाओं से तेरी महत्ता का ह्रास होता जा रहा है। सावधान हो भैया ! कमर कस। अपनी संकीर्णता और अहंकार को मिटाता जा। अपने दैवी स्वभाव, शक्ति, उल्लास, आनन्द, प्रेम और चित्त के प्रसाद को पाता जा।

यह पक्की गाँठ बाँध लो कि जो कुछ हो रहा है, चाहे अभी तुम्हारी समझ में न आवे और बुद्धि स्वीकार न करे तो भी परमात्मा का वह मंगलमय विधान है। वह तुम्हारे मंगल के लिए ही सब करता है। परम मंगल करने वाले परमात्मा को बार-बार धन्यवाद देते जाओ.... प्यार करते जाओ... और अपनी जीवन-नैया जीवनदाता की ओर बढ़ाते जाओ।

ऐसा कोई व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति नहीं जो तुम्हारी आत्मशक्ति के अनुसार बदलने में राजी न हो। परंतु अपने भीतर का यह आत्मबल, यह संकल्पबल विकसित करने की युक्ति किसी सच्चे महापुरुष से सीखने को मिल जाये और उसका विधिवत् अनुष्ठान करे तो, नर अपने नारायण स्वभाव में इसी जन्म में जाग सकता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आत्मदृष्टि का दिव्य अंजन

वृन्दावन में एक मस्त संत रहते थे। बड़े मधुर। सर्वत्र आत्मदृष्टि रखकर विचरते थे। किसी दुष्ट आदमी ने किसी बहकावे में आकर, भांग का नशा करके, कुछ रुपयों की लालच में फँसकर इन संत भगवंत के सिर में डण्डा दे मारा और पलायन हो गया। सिर से रक्त की धार बही। संत बेसुध हो गये। उनकी यह हालत देखकर सज्जन पुरुषों का हृदय काँप उठा। उन्होंने संत श्री को अस्पताल में पहुँचा दिया, और कर्तव्य पूरा करके रवाना हो गये। वे तो रास्ते के पथिक थे।

अस्पताल में कुछ समय के बाद बाबा जी होश में आये। देखा तो अस्पताल का कोई अधिकारी दूध का गिलास लिए सेवा में खड़ा था। बोलाः

"बाबा जी ! दूध पीजिए।"

बाबा जी मुस्कराये। उसको देखते हुए मधुरता से बोलेः "यार ! कभी तो डण्डा मारता है और कभी दूध पिलाता है !"

अधिकारी चौंका। कहने लगाः "नहीं नहीं स्वामी जी ! मैंने डण्डा नहीं मारा।"

"तू हजार कसम खा लेकिन मैं पहचान गया तुझे यार ! एक तरफ डण्डा मारता है, दूसरी तरफ मरहम-पट्टी करता है, तीसरी तरफ दूध पिला रहा है। बड़ी अदभुत लीला है तेरी। बड़ी चालाकी करता है तू।"

"स्वामी जी ! स्वामी जी ! मैं सच कहता हूँ। मैंने डण्डा नहीं मारा ! मैं तो.... मैं तो..." अधिकारी हैरान हो रहा था।"

"अरे ! तूने कैसे नहीं मारा? तू ही तो था।"

वह घबड़ाया। बोलाः "स्वामी जी ! मैं तो अस्पताल का कर्मचारी हूँ और आपका प्रशंसक हूँ... भक्त हूँ।"

बाबा जी हँसते हुए बोलेः "क्या खाक तू अस्पताल का कर्मचारी है ! तू वही है। कर्मचारी तू बना बैठा है, डण्डा मारने वाला भी तू बना बैठा है, मरहम-पट्टी करने वाला भी तू बना बैठा है और दूध पिलाने वाला भी तू बना बैठा है। मैं तुझे पहचान गया हूँ। तू मुझे धोखा नहीं दे सकता।"

बाबाजी आत्ममस्ती में सराबोर होने लगे।

अब उस अधिकारी को ख्याल आया कि बाबा जी शुद्ध आत्मदृष्टि से ही यह सब बोल रहे हैं।

देह सभी मिथ्या हुई जगत हुआ निस्सार।
हुआ आत्मा से तभी अपना साक्षात्कार।।

जीव को जब आत्मदृष्टि प्राप्त हो जाती है तब अनेकों में खेलते हुए "एक" के पहचान लेता है। इसका मतलब यह नहीं कि सर्वत्र आत्मदृष्टि से निहारनेवाला मूर्ख होकर रहता है, बुद्धु होकर रहता है, पलायनवादी होकर रहता है। नहीं, ऐसा बुद्धु, मूर्ख या पलायनवादी नहीं होना है। जो कार्य करो, पूरी कुशलता से करो। **'योग कर्मसु कौशलम्।'**

किसी भी कार्य से अपना और दूसरों का अहित न हो। कर्म ऐसे करो कि कर्म करते-करते कर्ता का बाध हो जाये, जिससे कर्म करने की सत्ता आती है उस सत्य का साक्षात्कार हो जाये।

तुमने कितना अच्छा कार्य किया इस पर ध्यान मत दो लेकिन इससे भी बढ़िया कार्य कर सकते हो कि नहीं ऐसी उत्तुँग और विकासशील दृष्टि रखो। विकास अन्धकार की ओर नहीं बल्कि प्रकाश की ओर हो। 'मैंने इतनी रिश्वत ली, इससे ज्यादा भी ले सकता हूँ कि नहीं?' ऐसा दुष्ट विचार नहीं करना।

तुमने किसी कारण से, लोभ में आकर किसी का अहित कर दिया, हजारों लोगों की सात्त्विक श्रद्धा को ठेस पहुँचा दिया तो पाप के पोटले बँध जायेंगे। हजारों जन्म भोगने के बाद भी इसका बदला चुकाना मुश्किल हो जायेगा।

यह मानवजन्म कर्मभूमि है। यहाँ से अनन्त जन्मों में ले जाने वाले संस्कार इकट्ठे कर सकते हो और अनन्त जन्मों में भटकने वाले बेईमान मन को आत्मदृष्टि का अंजन लगा कर

उस मालिक के अमृत से परितृप्त करके आत्म-साक्षात्कारी भी बन सकते हो। मरजी तुम्हारी। **'यथा योग्यं तथा कुरु।'**

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐ

सच्ची शरणागति

एक संत कहीं जा रहे थे। रास्ते में कड़ाके की भूख लगी। गाँव बहुत दूर था। उनका मन कहने लगाः

"प्रभु विश्वव के पालन कर्ता हैं। उनसे भोजन माँग लो। वे कैसे भी करके अपने प्यारे भक्त को भोजन देंगे।"

संत ने अपने मन को समझायाः "अरे ! मैं प्रभु का अनन्य भक्त होकर प्रभु में अविश्वास करूँ? क्या प्रभु को पता नहीं है कि मुझे भूख लगी है? प्यारे प्रभु से माँगना विश्वासी भक्त का काम नहीं है।"

संत ने इस प्रकार मन को समझा दिया। मन की कुचाल विफल हो गयी। तब वह दूसरी चाल चला। मन ने कहाः "अच्छी बात है। तुम खाना मत माँगो लेकिन भूखे कब तक रहोगे? भूख सहन करने का धीरज तो माँग लो।"

संते ने सोचाः "यह ठीक है। भोजन न सही, लेकिन धीरज माँगने में कोई हर्ज नहीं।"

इतने में ही उनके शुद्ध अन्तःकरण में भगवान की दिव्य वाणी सुनाई दीः "धीरज का समुद्र मैं सदा तेरे साथ ही हूँ न? मुझे स्वीकार न करके धीरज माँगने चला है? अपनी श्रद्धा-विश्वास को क्यों खो रहा है? क्या बिना माँगे मैं नहीं देता? अनन्य भक्त के योगक्षेम का सारा भार उठाने की तो मैंने घोषणा कर रखी है।"

संत के हृदय में समाधान हो गया। भाव से गदगद होते हुए कहाः "सच है प्रभो ! मैं मन के भुलावे में आ गया था। मैं भूला था नाथ ! भूला था।"

"मैं भूलने वाला कौन हूँ यह खोजूँ। खोजने बैठा तो जगन्नियन्ता, सर्वान्तर्यामी प्रभु ही प्रभु को पाया। मन की क्षुद्र इच्छाएँ, वासनाएँ ही आज तक मुझे तुझसे दूर कर रहीं थीं। मैं उन्हें सत्ता देता था तभी वे मुझे दबाए हुए नाच रही थीं। तेरे मेरे शाश्वत सम्बन्ध की जब तक मुझे विस्मृति थी तब तक मैं इनके चंगुल में था।"

ऐसा सोचते सोचते संत अपने परमानंद स्वरूप में डूब गये।

अनुक्रम

ॐॐॐॐ

समर्थ की लीला

एक दिन प्रभात काल में कुछ ब्राह्मण और एक विशाल फौज के लेकर शिवाजी महाराज अपने गुरुदेव समर्थ स्वामी रामदास के चरणों में दर्शन व सत्संग के हेतु पहुँचे। संत-सानिध्य में घण्टे बीत गये इसका पता ही न रहा। दोपहर के भोजन का समय हो गया।

आखिर शिवाजी उठे। श्रीचरणों में प्रणाम किया और विदा माँगी। समर्थ ने कहाः "सब लोग भूखे हैं। भोजन करके जाओ।"

शिवाजी भीतर सोचने लगेः "इतनी बड़ी फौज का भोजन कोई भी पूर्व आयोजन के बिना कैसे होगा? समय भी नहीं है और सीधा-सामान भी नहीं है।" स्वामी समर्थ ने अपने शिष्य कल्याण गोसांई को भोजन का प्रबन्ध करने की आज्ञा दे दी। वह भी विस्मित नयनों से गुरुदेव के मुखमण्डल को देखता ही रह गया। पूर्व सूचना के बिना इतने सारे लोगों की रसोई बनाई नहीं थी। स्वामीश्री उन लोगों की उलझी हुई निगाहें समझ गये और बोलेः

"वत्स ! वह देख। पर्वत में जो बड़ा पत्थर खड़ा दिखता है न, उसको हटाना। एक गुफा का द्वार खुलेगा। उस गुफा में सब माल तैयार है।"

कल्याण गोसांई ने जाकर पत्थर को हटाया तो गुफा के भीतर गरमागरम विभिन्न पकवान व व्यञ्जनों के भरे खमूचे देखे। प्रकाश के लिए जगह-जगह पर मशालें जल रही थीं। शिवाजी महाराज सहित सब लोग दंग रह गये। यथेष्ट भोजन हुआ। फिर स्वामी जी के समक्ष शिवाजी महाराज ने पूछाः

"प्रभो ! ऐसे अरण्य में इतने सारे लोगों के भोजन की व्यवस्था आपने एकदम कैसे कर दी? कृपा करके अपनी यह लीला हमें समझाओ, गुरुदेव !"

"इसका रहस्य जाकर तुकोबा से पूछना। वे बताएँगे।" मंद मंद मधुर स्मित के साथ समर्थ ने कहा।

कुछ दिन बाद दोपहर अपनी लम्बी चौड़ी फौज के साथ शिवाजी महाराज संतवर्य तुकाराम जी महाराज के दर्शन करने देहुगाँव गये। अनुचर के द्वारा संदेशा भेजा कि, "मै शिवाजी, आपके दर्शन करने आया हूँ। कृपया आज्ञा दीजिये।"

महाराज ने कहलवायाः "दोपहर का समय है और भोजन तैयार है। पहले आप सब लोग भोजन कर लो, बाद में दर्शन करके जाना। अपने आदमियों को भेजो। पका हुआ भोजन, स्वयंपाकी ब्राह्मणों के लिए कच्चा सीधा और घोड़ों के लिए दाना पानी यहाँ से ले जायें।"

प्रत्युत्तर सुनकर शिवाजी विस्मित हो गये। तुकाराम जी का घर देखो तो टूटा-फूटा झोपड़ा। शरीर पर वस्त्र का ठिकाना नहीं। भजन करने के लिए मंजीरे भी पत्थर के। यह सब ध्यान में रखते हुए शिवाजी ने दो आदमियों से कहाः "वहाँ जाओ और महाराज श्री जो कुछ दें प्रसाद समझकर ले आओ।"

शिवाजी के आगमन में विलम्ब होता देखकर तुकाराम महाराज ने रिद्धि-सिद्धि योग के बल से इन्द्रयाणी के तीर पर एक विशाल मंडप खड़ा कर दिया। अनेक प्रकार के व्यञ्जन व पकवान तैयार हो गये। फिर एक गाड़ी में कच्चा सीधा और घोड़ों के लिए दाना पानी भरवाकर शिष्य को भेजा और कहा कि जिसको जो सामान चाहिए वह देना और बाकी के सब लोगों को भोजन के लिए यहाँ ले आना।

शिवाजी अपने पूरे मंडल के साथ आये। देखा तो विशाल भव्य मंडप खड़ा है। जगह-जगह पर सुहावने परदे, आराम स्थान, भोजनालय, पानी के प्याऊ, जाति के मुताबिक भोजन की अलग अलग व्यवस्था। यह सब रचना देखकर शिवाजी आश्चर्य से मुग्ध हो गये। भोजनोपरान्त थोड़ा विश्राम करके तुकाराम महाराज के दर्शन करने गये। टूटे-फूटे बरामदे में बैठकर भजन करते हुए संतश्री को प्रणाम करके बैठे। फिर पूछाः

"महाराज जी ! हमारे गुरुदेव स्वामी समर्थ के यहाँ भी भोजन का ऐसा सुन्दर प्रबन्ध हुआ था। मैंने रहस्य पूछा तो उन्होंने आपसे मर्म जानने की आज्ञा दी। कृपया अब आप हमें बताओ"

तुकाराम जी बोलेः "अज्ञान से मूढ हुए चित्तवाले देहाभिमानी लोग इस बात को नहीं समझते कि स्वार्थ और अहंकार त्याग कर जो अपने आत्मदेव विठ्ठल में विश्रान्ति पाते हैं उनके संकल्प में अनुपम सामर्थ्य होता है। रिद्धि-सिद्धि उनकी दासी हो जाती है। सारा विश्व संकल्प का विलास है। जिसका जितना शुद्ध अन्तःकरण होता है उतना उसका सामर्थ्य होता है। अज्ञानी लोग भले समर्थजी में सन्देह करें लेकिन समर्थ जी तो समर्थ तत्त्व में सदा स्थिर हैं।

उसी समर्थ तत्त्व में सारी सृष्टि संचालित हो रही है। सूरज को चमक, चन्दा को चाँदनी, पृथ्वी में रस, फूलों में महक, पक्षियों में गीत, झरनों में गुंजन उसी चैतन्य परमात्मा की हो रही है। ऐसा जो जानता है और उसमें स्थित रहता है उसके लिए यह सब खिलवाड़ मात्र है।

शिवाजी ! सन्देह मत करना। मनुष्य के मन में अथाह शक्ति व सामर्थ्य भरा है, अगर वह अपने मूल में विश्रान्ति पावे तो। स्वामी समर्थ क्या नहीं कर सकते?

मैं तो एक साधु हूँ, हरि का दास हूँ, अनाथ से भी अनाथ हूँ। मेरा घर देखो तो टूटा-फूटा झोंपड़ा है लेकिन मेरी आज्ञा तीनों लोक मानते है। रिद्धि-सिद्धि मेरी दासी है। साधुओं का माहात्म्य क्या देखना? उनके विषय में कोई सन्देह नहीं करना चाहिए।"

रिद्धि सिद्धि दास कामधेनु घरीं परी नाहीं भाकरी भक्षावया।
लोडिस्ते बोलिस्ते पलंगसूपती, परी नाहीं लंगोटीने सावाया।
पुसाल जरी आह्मां वैकुंठीचा वास परी नाहीं रहावयास स्थळ कोठें।
तुका म्हणे आह्मीं राजे वैकुंठीचे, पर नाहीं कोणासे उरे पुरे।।

"रिद्धि-सिद्धि दासियाँ है, कामधेनु घर में है लेकिन मुझे खाने के लिए रोटी का टुकड़ा भी नहीं है। गद्दी-तकिये पलंग आदि वैभव है लेकिन मुझे पहनने के लिए लंगोट का चीथड़ा भी नहीं है। यदि पूछो तो वैकुंठ में मेरा वास है यह हकीकत है लेकिन यहाँ तो मुझे रहने के लिए जगह नहीं है। तुकाराम कहते हैं कि हम हैं तो वैकुण्ठ के राजा लेकिन किसी से हमारा गुजारा नहीं हो सकता।"

संतों की यही दशा होती है।

शिवाजी महाराज अगम निगम में यथेच्छ विचरने वाले संतों की लीला पर सानंदाश्चर्य का अनुभव करते हुए विदा हुए।

कुछ दिन बाद उनको संकल्प हुआ कि गुरुदेव समर्थ स्वामी रामदास के बन्धु 'श्रेष्ठ' गंगातीर पर जांबगाँव में गृहस्थ पालते हुए रहते हैं, उनका सामर्थ्य देखें कैसा है ! एक रात्रि के अन्तिम प्रहर में श्रेष्ठ जी ने शिवाजी को स्वप्न में दर्शन दिया। माला व नारियल प्रदान किया। बहुत सारी बोधप्रद बातें की और अदृश्य हो गये। सुबह में उठकर शिवाजी ने अपने हाथों में वही नारियल और माला प्रत्यक्ष पायी। उनको विश्वास हो गया कि ये भी स्वामी समर्थ जैसे ही समर्थ हैं। फिर भी प्रत्यक्ष जाकर दर्शन हेतु दो हजार आदमियों को लेकर श्रेष्ठ जी के दर्शन करने गये।

दोपहर का समय था। वैश्वदेव करके काकबलि डालने के लिए श्रेष्ठ जी दरवाजे पर खड़े थे। शिवाजी महाराज पहुँचे वहाँ। स्वप्न में देखी हुई मूर्ति को प्रत्यक्ष पाकर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। भाव से आप्लावित हृदय से चरण स्पर्श किया। श्रेष्ठ जी ने पच्चीस लोगों के लिए बनाई गई रसोई में दो हजार लोगों को भरपेट भोजन कराया। एक टोकरे भर दाने और तेरह पूले घास से तमाम घोड़े आदि प्राणियों को घास चारा पहुँचाया। जितना दिया उतना ही सब सामान बाकी बचा। यह सब शिवाजी महाराज देखकर दंग रह गये।

श्रेष्ठ जी के आग्रह से पंद्रह दिन वहाँ रहे। विदा हुए तो श्रेष्ठ जी ने वस्त्रालंकार की भेंट दी। शिवाजी को निश्चय हो गया कि समर्थ जी और श्रेष्ठ जी दोनों बन्धु समान रूप से समर्थ हैं।

तदनन्तर शिवाजी महाराज ने अपने गुरुदेव समर्थ स्वामी रामदास के श्री चरणों में जाकर क्षमा माँगी और अपना पूरा अनुभव कह सुनाया।

समर्थ ने कहाः

"जहाँ जाओगे वहाँ एक ही है। उस एक तत्त्व की कोई सीमा नहीं। वह निःसीम है अतः हमें निःसीमदास हो जाना चाहिए।"

शिवाजी ने विनयपूर्वक पूछाः "निःसीमदास साधु होते हैं यह सच है लेकिन उन सबके पास रिद्धि-सिद्धि होती है। वे इनका उपयोग करते हैं। रिद्धि-सिद्धि का उपयोग मुक्ति में प्रतिबन्धक है।"

श्री समर्थ हँसते हुए बोलेः "भाई ! ईश्वर प्राप्ति के लिए हम जब निःसीमता से दास्यभाव रखते हुए भक्ति करते हैं तब रिद्धि-सिद्धियाँ आकर अपने मोह में फँसाने के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न करती हैं। उनके मोह में न फँसकर हमेशा ईश्वर के ध्यान में रहने से ईश्वर अपने दास को ईश्वरपना देते हैं। इस अवस्था को प्राप्त करके दास मालिक बन जाता है। मालिक को किसी कर्म का बाध नहीं होता। ऐसा मालिकपना मिलने से पूर्व यदि रिद्धि-सिद्धियों के द्वारा कार्य किये जायें तो वे बाधक बनते हैं। इससे जीवन का चरम लक्ष्य सिद्ध नहीं होता। चरम लक्ष्य को सिद्ध कर लेने वाले अर्थात् मालिक बने हुए साधु निःसीम हो जाते हैं। फिर इन रिद्धि-सिद्धियों के मालिक होकर उनका उपयोग करने से वे बन्धनकारक नहीं होतीं।"

गुरुदेव की रहस्यमय वाणी सुनकर शिवाजी को परम संतोष हुआ।

अनुक्रम

सच्चा वशीकरण मंत्र

सम्राट तेग बहादुर फूलों के गमले के शौकीन था। उसने अच्छे, सुहावने, सुन्दर मधुर सुगन्धवाले फूलों के पच्चीस गमले अपने शयनखण्ड के प्रांगण में रखवाये थे। एक आदमी को नियुक्त कर दिया था उन गमलों की देखभाल करने के लिए। दैवयोग से उस आदमी से एक गमला टूट गया। राजा को पता चला। वह सुनकर आगबबूला हो गया। नौकर बड़ा भयभीत था। वह राजा के क्रूर स्वभाव से परिचित था।

राजा ने फाँसी का हुक्म दे दिया, दो महीने की मुद्दत पर। वजीर ने राजा से अनुनय विनय किया, समझाया लेकिन राजा ने एक न मानी। नौकर के सिर पर दो माह के बाद की फाँसी नाच रही थी। अब ईश्वर के द्वार खटखटाने के सिवाय कोई चारा भी न रहा। वह ईश्वर की प्रार्थना में लग गया।

वहाँ राजा ने नगर में घोषणा करवा दी कि जो कोई आदमी टूटे हुए गमले की मरम्मत करके ज्यों का त्यों बना देगा उसे मुँह माँगा पुरस्कार दिया जायेगा। कई लोग अपना भाग्य आजमाने के लिए आये लेकिन सब असफल रहे।

गमला टूट जाये फिर वैसे का वैसे बने? देह टूट जाये फिर उसे वैसे का वैसा कोई कैसे बना सकता है? ऐसा कोई डॉक्टर है जो एक बार मरीज के शरीर से प्राण निकल जाये फिर उसे वैसे का वैसे बना दे? देह के टुकड़े हो जाये फिर उसे वैसे का वैसा जोड़ दे? ऑपरेशन होने के बाद भी देह वैसे का वैसा नहीं रहता है। कुछ न कुछ कमजोरी, जोड़-तोड़ या कमी रह जाती है। पतंग फट जाए उसको गोंद से जोड़ तो सकते हैं लेकिन पतंग वैसे का वैसा नहीं बन पाता।

वह नौकर रोजाना दिन गिनता है, मनौतियाँ मानता है कि: "हे भगवान ! हे प्रभु ! तू दया कर ! राजा का मन बदले या कुछ भी हो, मैं बच जाऊँ। हे नाथ ! रहम कर, कृपा कर।" आदि आदि।

एक महीना बीत गया तब एक संत महात्मा नगर में पधारे। उनके कान तक बात पहुँची कि राजा का गमला कोई जोड़ दे तो राजा मुँह माँगा ईनाम देगा। जिस आदमी से गमला टूटा है उसको फाँसी की सजा दी गई है।

वे संत आ गये राजदरबार में और बोलेः "राजन ! तेरा गमला टूटा है उसे जोड़ने की जिम्मेवारी हम लेते हैं। बताओ, कहाँ है वह गमला।"

राजा उन्हें उस खण्ड में ले गया जहाँ सब गमले रखे हुए थे। संत ने टूटे हुए गमले को खूब बारीकी से, सूक्ष्मता से देखा। अन्य चौबीस गमलों पर भी नज़र घुमाई। राजा पर भी अपनी एक नूरानी निगाह डाल दी। महात्मा थे वे ! फिर एक डण्डा मँगवाया। नौकर ने लाकर दिया। महात्मा ने उठाया डण्डा और 'एक दो.... दो... तीन.... चार....' प्रहार करते हुए तड़ातड़ चौबीस के चौबीस गमले तोड़ दिये। थोड़ी देर तो राजा चकित होकर देखता रह गया कि एक गमला जोड़ने का यह नया तरीका कैसा है ! कोई नया विज्ञान होगा ! महात्मा लोग जो हैं !

फिर देखा, महात्मा तो निर्भय खड़े हैं, मस्त। तब राजा बोलाः
"अरे साधू ! यह तूने क्या किया?"

"मैंने चौबीस आदमियों की जान बचाई। एक गमला टूटने से एक को फाँसी लग रही है। चौबीस गमले भी ऐसे ही किसी न किसी के हाथ से टूटेंगे तो उन चौबीसों को भी फाँसी लगेगी। मैंने उन चौबीस आदमियों की जान बचाई।"

राजा महात्मा की रहस्य भरी बात न समझा। उसने हुक्म दियाः "इस कम्बख्त को हाथी के पैर तले कुचलवा दो।"

महात्मा भी कोई कच्ची मिट्टी के नहीं थे। उन्होंने वेद के वचनों का अनुभव किया था। शील उनके अन्तःकरण का अपना खजाना था। शरीर और अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य और व्यापक चैतन्य के तादात्म्य का निजी अनुभव था। गुरु का ज्ञान उनको पच चुका था। देह क्षणभंगुर है और आत्मा अमर है ऐसा उन्हें पता लग चुका था। किसी भी परिस्थिति में घबड़ाना, भयभीत होना, मृत्यु से डरना, ऐसी बेवकूफी उन महात्मा के अन्तःकरण में नहीं थी। वे आत्मदेव में प्रतिष्ठित थे। अपने वास्तविक "मैं" को ठीक से जानते थे। और मिथ्या "मैं" को मिथ्या मानते थे।

हाथी को लाया गया। महात्मा तो सो गये भूमि पर 'सोऽहं.... शिवोऽहं....' का भाव रोम रोम में घूँटते हुए। हाथी में महावत में, राजा में, मजाक उड़ाने वालों में, सब में मैं हूँ। 'सोऽहं... सर्वोऽहं.... शिवोऽहं...।' सबका कल्याण हो। सब ब्रह्म ही ब्रह्म है, कल्याण स्वरूप है। ब्रह्म हाथी बनकर आया है। ब्रह्म महावत बनकर आया है। ब्रह्म राजा बनकर हुक्म दे रहा है और ब्रह्म ही सोया है। ब्रह्म का ब्रह्म में खिलवाड़ हो रहा है। 'सोऽहम्...।'

ब्रह्म वजीर होकर खड़ा है। ब्रह्म सिपाही होकर भाला हाथ में लिए तैयार है। वही ब्रह्म प्रजा होकर देख रहा है, महिलाएँ होकर घूँघट से झाँक रही हैं। वही ब्रह्म नन्हा-मुन्ना होकर छोटे-छोटे

वस्त्र धारण करके आया है। मेरे ब्रह्म के अनेक रूप है और वह ब्रह्म मैं ही हूँ।" ऐसा महात्मा का चिन्तन होता रहा.... सर्वात्मदृष्टि बनी रही।

महावत हाथी को अंकुश मारते मारते थक गया लेकिन हाथी महात्मा से दो कदम दूर ही खड़ा रह जाये। आगे न बढ़े। दूसरा हाथी लाया गया। दूसरा महावत बुलाया गया। उसने भी हाथी को अंकुश मारे लेकिन हाथी महात्मा से दो कदम दूर का दूर !

आखिर राजा भी थका। महात्मा से बोलाः "तुम गजवशीकरण मंत्र जानते हो क्या?"
"मैं गजवशीकरण मंत्र नहीं जानता हूँ लेकिन अन्तःकरण वशीकरण मंत्र जानता हूँ। मैं प्रेम का मंत्र जानता हूँ।" कहकर महात्मा मुस्कराये।

कोई चाहे तुम्हारे लिए कितना भी बुरा सोचे, बुरा करने का आयोजन बनाये लेकिन तुम उसके प्रति बुरा न सोचो तो उसके बाप की ताकत नहीं है कि वह तुम्हारा बुरा कर सके। मन ही मन कुढ़ता रहे लेकिन वह तुम्हारा अमंगल नहीं कर सकता, क्योंकि तुम उसका मंगल चाहते हो।

महात्मा ने कहाः "राजन ! जब मैं सीधा लेट गया तो हाथी में, तुममें और मुझमें एक ही प्रभु बस रहा है, ऐसा सोचकर उस सर्वसत्ताधीश को प्यार करते हुए मैंने तुम्हारा और हाथी का परम-हित चिन्तन किया। हाथी में मेरा परमात्मा है और तुम में भी मेरा परमात्मा है, चाहे तुम्हारी बुद्धि उसे स्वीकारे या न स्वीकारे। मैंने तुम्हारा भी कल्याण चाहा और महावत व हाथी का भी कल्याण चाहा।

अगर मैं तुम्हारा बुरा चाहता तो तुम्हारी बुराई जोर पकड़ती। तुमसे ईर्ष्या करता तो तुम्हारी ईर्ष्या जोर पकड़ती। तुम्हारे प्रति गहराई में घृणा करता तो तुम्हारी घृणा जोर पकड़ती। लेकिन हे मित्र ! मेरे चित्त में तुम्हारे लिए ईर्ष्या और घृणा की जगह नहीं है, क्योंकि घृणा और ईर्ष्या करके मैं अपना अन्तःकरण अपवित्र क्यों करूँ?"

जब हम किसी के लिए ईर्ष्या व घृणा करते हैं तो वह आदमी तो सोफा पर मजे से बैठा है अपने घर में, पंखे के नीचे हवा खाता है, झूले पर मजे से झूलता है और हम घृणा करके अपना अन्तःकरण मलिन करते हैं। जिसकी हम निन्दा करते हैं वह बाजार में आईसक्रीम खा रहा है और हम निन्दा करके दिल में होली जला रहे हैं। कितनी नासमझी की बात है !

महात्मा आगे कहने लगेः "हे राजन ! हमारी नासमझी गुरुदेव की कृपा से छूट गई। इसीलिए महावत के अंकुश लगने पर भी हाथी मुझ पर पैर नहीं रख सका। अगर शरीर का प्रारब्धवेग ऐसा होगा तो इसी प्रकार ही मौत होकर रहेगी, इसमें क्या बड़ी बात है? तब तुम रक्षा

करने बैठोगे तो भी यह शरीर नहीं जियेगा। प्रारब्ध में ऐसी मौत नहीं है तो तुम्हारे जैसे दस राजा नाराज हो जाएँ तो भी बिगड़ बिगड़कर क्या बिगड़ेगा? राजी भी हो गये तो बन बनकर क्या होगा? जो काम मुझे बनाना था वह मैंने बना लिया है।

राजन ! देह तो क्षणभंगुर है। इसकी अमरता हो नहीं सकती ! जब यह देह अमर नहीं तो मिट्टी के गमले अमर कैसे रह सकते हैं? ये तो फूटेंगे, गलेंगे, मिटेंगे। पौधा भी सूखेगा। गलने, सड़ने, मरने वाले गमले के लिए तू बेचारे एक गरीब नौकर के प्राण ले रहा है। इसलिए मैंने डण्डा घुमाकर तुझे ज्ञान दे दिया कि ये तो मरने वाली चीज है। तू अपने अन्तःकरण का निर्माण कर। अन्तःकरण का विनाश मत कर। मिटने वाली चीजों के साथ इतनी मुहब्बत करके तू अपने अन्तःकरण को बिगाड़ मत। जो तेरे साथ चलेगा। बिगड़ने वाली चीजों में ममता बढ़ाकर तू शील का त्याग मत कर। क्षमा, शौच, अस्तेय, जितेन्द्रियता, परदुःखकातरता – ये सब शील के अन्तर्गत आते हैं, दैवी संपत्ति के अन्तर्गत आते हैं।"

राजा के चित्त पर महात्मा के शब्दों का प्रभाव पड़ा। वह सिंहासन से नीचे उतरा। हाथ जोड़कर क्षमा माँगी। नौकर की फाँसी का हुक्म वापस ले लिया और उसे आश्वासन दिया। फिर महात्मा से गुरुमंत्र लिया और मायिक पदार्थों से ममता हटाकर शाश्वत सत्य को पाने के लिए उस आत्मवेत्ता महापुरुष के बताये मार्ग पर चल पड़ा।

ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा से आधी साधना संपन्न हो जाती है। तमाम दोष दूर होने लगते हैं। जगत के भोग पाने की इच्छा मात्र से आधी साधना नष्ट हो जाती है।

योगवाशिष्ठ महारामायण में कहा हैः "जितनी-जितनी इच्छा बढ़ती है उतना-उतना जीव छोटा हो जाता है, लघु हो जाता है। वह इच्छाओं का, तृष्णाओं का जितना त्याग करता है उतना उतना वह महान होता जाता है। संसार के सुखों को पाने की इच्छा दोष ले आती है और आत्मसुख पाने की इच्छा सदगुण ले आती है।

ऐसा कोई दुर्गुण नहीं जो संसार के भोग की इच्छा से पैदा न हो। आदमी कितना भी अक्लमन्द हो, बुद्धिमान हो, सब जानता भी हो लेकिन भोग की इच्छा दुर्गुण ले आयेगी। आदमी चाहे कितना भी अनजान हो, बुद्धु हो लेकिन ईश्वर पाने की इच्छा है तो उसमें सदगुण ले आयेगी।

ॐॐॐॐॐॐॐ

काम विवेकी का शत्रु है। काम अज्ञानी को तो कालान्तर में दुःख देता है परन्तु विवेकी को तो तत्काल दुःख देने वाला है। यह कभी पूरा नहीं होता। जैसे ईंधन और घी डालने से अग्नि का पेट नहीं भरता उसी प्रकार कितना भी भोग भोगो, काम की पूर्ति कभी नहीं होती। वह बढ़ता ही जाता है, इसलिए इसमें तो आग ही लगानी पड़ेगी।

संसार में ज्ञान तो सभी को प्राप्त है परन्तु काम ने ज्ञान को ढक लिया है। ज्ञानस्वरूप आत्मा तो सब में सर्वत्र है किन्तु काम से ढका रहने के कारण दिखता नहीं। वैराग्यरूप भाग्य का उदय हुए बिना वह चिदघन आनन्दस्वरूप आत्मा प्राप्त नहीं होता।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

बड़ों की बड़ाई

प्रयागराज में जहाँ स्वामी रामतीर्थ रहते थे उस जगह का नाम रामबाग था। वहाँ से एक बार वे स्नान करने को गंगा नदी पर गये। उस समय के कोई स्वामी अखण्डानन्द जी उनके साथ थे। स्वामी रामतीर्थ स्नान करके बाहर आये तो अखण्डानन्द जी ने उन्हें कौपीन दी। नदी के तटपर चलते-चलते पैर कीचड़ से लथपथ हो गये। इतने में मदनमोहन मालवीय जी वहाँ आ गये। इतने सुप्रसिद्ध और कई संस्थाओं के अगुआ मदनमोहन मालवीय जी ने अपने कीमती दुशाले से स्वामी रामतीर्थ के पैर पौंछने शुरु कर दिये। अपने बड़प्पन की या "लोग क्या कहेंगे" इसकी चिन्ता उन्होंने नहीं की। यह शील है।

अभिमानं सुरापानं गौरवं रौरवस्तथा।
प्रतिष्ठा शूकरी विष्टा त्रीणी त्यक्त्वा सुखी भवेत्।।

अभिमान करना यह मदिरापान करने के समान है। गौरव की इच्छा करना यह रौरव नरक में जाने के समान है। प्रतिष्ठा की परवाह करना यह सूअर की विष्टा का संग्रह करने के समान है। इन तीनों का त्याग करके सुखी होना चाहिए।

प्रतिष्ठा को जो पकड़ रखते हैं वे शील से दूर हो जाते हैं। प्रतिष्ठा की लोलुपता छोड़कर जो ईश्वर-प्रीत्यर्थे कार्य करते हैं उनके अन्तःकरण का निर्माण होता है। ईश्वर प्रीत्यर्थे कीर्तन करते हैं, ध्यान करते हैं उनके अन्तःकरण का निर्माण होता है।

ध्यान तो सब लोग करते हैं। कोई शत्रु का ध्यान करता है, कोई रुपयों का ध्यान करता है, कोई मित्र का ध्यान करता है, कोई पति का, पत्नी का चिन्तन-ध्यान करता है। यह शील में नहीं गिना जाता जो निष्काम भाव से परमात्मा का चिन्तन व ध्यान करता है उनके शील में अभिवृद्धि होती है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

नारायण मंत्र

एक बार मदनमोहन मालवीय जी गीताप्रेस, गोरखपुर में श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार के अतिथि बने। दूसरे दिन सुबह को मालवीय जी ने हनुमान प्रसाद जी से कहाः

"मैं आपको एक दुर्लभ चीज देना चाहता हूँ जो मुझे अपनी माता जी से वरदान रूप में मिली थी। उससे मैंने बहुत लाभ उठाया है।"

मालवीय जी उस दुर्लभ चीज की महिमा बताने लगे तो भाई जी ने अत्यंत उत्सुक्ता व्यक्त कीः "वह दुर्लभ चीज कृपया शीघ्रातिशीघ्र दीजिए।"

मालवीय जी ने कहाः "आज से चालीस वर्ष पूर्व मैंने माँ से आशीर्वाद माँगा कि, "मैं हर कार्य में सफल होऊँ और सफल होने का अभिमान न हो। अभिमान और विषाद आत्मशक्ति क्षीण कर देते हैं।" माँ ने कहा "जड़ चेतन में आदि नारायण वास कर रहे हैं। उस प्रभु का प्रेम से स्मरण करके फिर कार्य करना।"

"भाई जी ! चालीस वर्ष हो गये। जब-जब मैं स्मरण भूला हूँ तब तब असफल हुआ हूँ, अन्यथा सफल ही सफल रहा हूँ। इस पवित्र मंत्र का आप भी फायदा उठायें।"

हनुमानप्रसादजी ने उस मंत्र का खूब फायदा उठाया। उनके परिवार एवं अन्य सहस्रों लोगों ने भी उस पावन मंत्र का खूब लाभ उठाया।

कार्य के आदि में, मध्य और अन्त में 'नारायण.... नारायण...... नारायण.....' स्मरण करनेवालों को अवश्य लाभ होता है। अतः आप लोग भी इस मंत्र का फायदा उठायें।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

विवेक कीजिए

बुद्ध जब घर छोड़ कर जा रहे थे तब उनका छन्न नामक सारथी साथ में था। नगर से दूर जाकर बुद्ध जब उसको वापस लौटाने लगे तब वह रोयाः

"कुमार ! आप यह क्या रहे हैं? इतना सारा धन-वैभव छोड़कर आप जा रहे हैं ! आप बड़ी गलती कर रहे हैं। मैं नौकर हूँ। छोटे मुँह बड़ी बात होगी लेकिन मेरा दिल नहीं मान रहा है कहे बिना, इसलिए कह रहा हूँ। अपराध तो कर रहा हूँ स्वामी को समझाने का लेकिन आप थोड़ी सी समझ से काम लें। आप इतना धन, राज-वैभव, पुत्र-परिवार छोड़कर जा रहे हैं।

बुद्ध ने कहाः "प्रिय छन्न ! तूने तो धन की तिजौरियाँ दूर से देखी हैं लेकिन मेरे पास उनकी कुँजियाँ थीं। मैंने उनको नजदीक से देखा है। तूने राज-वैभव और पुत्र-पत्नी-परिवार को दूर से देखा है लेकिन मैंने नजदीक से देखा है। तू तो रथ चलाने वाला सारथी है जबकि मैं रथ का मालिक हूँ। मुझे अनुभव है कि यह वास्तविक धन नहीं है। मैंने उसे खूब नजदीक से देखा है।

धन वह है जो शक्ति दे। धन वह है जो निर्वासनिक बनाये। धन वह है जो फिर माता के गर्भ में न फँसाये। यह धन तो मेरे लिए बाधा है। मैंने ठीक से देखा है। मुझे इससे शान्ति नहीं मिली धन वह है जो आत्मशान्ति दे। तेरी सीख ठीक है लेकिन वह तेरी मति के अनुसार की सीख है। वास्तव में तेरी सीख में कोई दम नहीं।"

कई बार अज्ञानी लोग भक्तों को समझाने का ठेका ले बैठते हैं। भक्ति के रास्ते कोई सज्जन, सदगृहस्थ, सेठ, साहूकार, साहब, आफिसर, अधिकारी चलता है तो लोग समझाते हैं- "अरे साहब ! यह क्या चक्कर में पड़े हो? यह क्या अन्धश्रद्धा कर रहे हो?"

विनोबाजी कहते थेः "क्या श्रद्धा ने ही अन्धा होने का ठेका लिया है? अन्धश्रद्धा कहना भी तो अन्धश्रद्धा है !"

भक्तों के अन्धश्रद्धालु कहने वाले लोगों को सुना देना चाहिए किः "तुम बीड़ी-सिगरेट में भी श्रद्धा करते हो। उसमें कोई सुख नहीं फिर भी सुख मिलेगा यह मानकर फूँकते रहते हो, मुँह में आग लगाते रहते हो, कलेजा जलाते रहते हो। क्या यह अन्धश्रद्धा नहीं है? वाइन-व्हीस्की को, जो आल्कोहोल है उसे शरीर में भर रहे हो सुख लेने के लिए यह अन्धश्रद्धा नहीं है? डिस्को डान्स करके जीवन-शक्ति का ह्रास करते हो, यह अन्धश्रद्धा नहीं है? हरिकीर्तन करके कोई नाच रहा है तो यह अन्धश्रद्धा है? श्रद्धा ने ही अन्धा होने का ठेका लिया है क्या?"

श्रद्धा तो करनी ही पड़ती है। हम लोग डॉक्टर पर श्रद्धा करते हैं कि वह इन्जेक्शन में 'डिस्टील्ड वाटर' नहीं लगा रहा है। हालाँकि कुछ डॉक्टर 'डिस्टील्ड वाटर' के इन्जेक्शन लगा देते हैं। चाय बनाने वाले नौकर पर श्रद्धा करनी पड़ती है कि दूध जूठा न होगा, मच्छरवाला या मरे हुए पतंगेवाला न होगा। हज्जाम पर भी श्रद्धा करनी पड़ती है। वह खुला उस्तरा चला रहा है। उस्तरा गले पर नहीं घुमा देगा यह श्रद्धा है तभी तो आराम से दाढ़ी बनवा रहे हैं।

जरा सी हजामत करवानी है तो अनपढ़ हज्जाम पर श्रद्धा करनी पड़ती है, तो जन्म मरण की सारी हजामत मिटानी है तो वेद और गुरुओं पर श्रद्धा जरुरी है कि नहीं?

बस ड्राईवर पर श्रद्धा करनी पड़ती है। पचास-साठ आदमी अपना जान-माल सब ड्राईवर के भरोसे सौंपकर बस में बैठते हैं। कितने ही ऐक्सीडैंट बस-अकस्मात हो जाते हैं, लोग मर जाते हैं फिर भी हम बस में बैठना बन्द तो नहीं करते। श्रद्धा करते हैं कि हमार बस ड्राईवर ऐक्सीडैंट नहीं करेगा।

हवाई जहाज के पायलट पर श्रद्धा करनी पड़ती है। हवाई जहाज का स्टीयरींग इतना हल्का सा होता है कि जरा-सा यूं घूम जाये तो गये काम से। फिर भी दो सौ तीन सौ यात्री अपनी जान-माल, पूरा जीवन पायलेट के हवाले कर देते हैं। वह यहाँ से उठाकर लंदन रख देता है, अमेरिका रख देता है। जो पृथ्वी की एक जगह से उठाकर दूसरी जगह रख देता है, उस पायलट के सर्वस्व अर्पण करके ही बैठना पड़ता है तो जब सदा-सदा के लिए जीवत्व से उठाकर ब्रह्मत्व में प्रतिष्ठित कर दें ऐसे वेद, उपनिषद, गीता और संत-महापुरुष-सदगुरुओं पर श्रद्धा न करेंगे तो क्या तुम्हारी बीड़ी-सिगरेट पर श्रद्धा करेंगे? तुम्हारे वाइन पर श्रद्धा करेंगे? रॉक और डिस्को पर श्रद्धा करेंगे? तुम्हारे बहिर्मुख जीवन जीन की पद्धति पर श्रद्धा करेंगे? घुल-घुलकर माया के जाल में फँस मरेंगे? **इतने दुर्भाग्य हमारे नहीं हुए।**

हम तो फिर से यह प्रार्थना करेंगे कि हे प्रभु ! जब तक जी में जान है, तन में प्राण है तब तक मेरे दिल की डोरी, श्रद्धा की डोरी मजबूत बनी रहे.... तेरे तरफ बढ़ती रहे..... तेरे प्यारे भक्त और संतों के प्रति बढ़ती रहे।

नारायण ! नारायण ! नारायण ! नारायण ! नारायण !

आया जहाँ से सैर करने, हे मुसाफिर ! तू यहाँ।
था सैर करके लौट जाना, युक्त तुझको फिर वहाँ।
तू सैर करना भूलकर, निज घर बनाकर टिक गया।
कर याद अपने देश की, परदेश में क्यों रुक गया।।

फँसकर अविद्या जाल में, आनन्द अपना खो दिया।
नहाकर जगत मल सिन्धु में, रंग रूप सुन्दर धो दिया।
निःशोक है तू सर्वदा, क्यों मोह वश पागल भया।
तज दे मुसाफिर ! नींद, जग, अब भी न तेरा कुछ गया।।
सदगुरु वचन शिर धार कर, व्यापार जग का छोड़ दे।
जा लौट अपने धाम में, नाता यहाँ का तोड़ दे।।
सदगुरु वचन जो मानता, निश्चय अचल पद पाय है।
भोले मुसाफिर ! हो सुखी, क्यों कष्ट व्यर्थ उठाय है।।
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

कुछ उपयोगी मुद्राएँ

प्रातः स्नान आदि के बाद आसन बिछा कर हो सके तो पद्मासन में अथवा सुखासन में बैठें। पाँच-दस गहरे साँस लें और धीरे-धीरे छोड़ें। उसके बाद शांतचित्त होकर निम्न मुद्राओं को दोनों हाथों से करें। विशेष परिस्थिति में इन्हें कभी भी कर सकते हैं।

लिंग मुद्रा

लिंग मुद्रा

विधिः दोनों हाथों की उँगलियाँ परस्पर भींचकर अन्दर की ओर रहते हुए अँगूठे को ऊपर की ओर सीधा खड़ा करें।

लाभः शरीर में ऊष्णता बढ़ती है, खाँसी मिटती है और कफ का नाश करती है।

शून्य मुद्रा

शून्य मुद्रा

विधिः सबसे लम्बी उँगली (मध्यमा) को अंदपर की ओर मोड़कर उसके नख के ऊपर वाले भाग पर अँगूठे का गद्दीवाला भाग स्पर्श करायें। शेष तीनों उँगलियाँ सीधी रहें।

लाभः कान का दर्द मिट जाता है। कान में से पस निकलता हो अथवा बहरापन हो तो यह मुद्रा 4 से 5 मिनट तक करनी चाहिए।

पृथ्वी मुद्रा

पृथ्वी मुद्रा

विधिः कनिष्ठिका यानि सबसे छोटी उँगली को अँगूठे के नुकीले भाग से स्पर्श करायें। शेष तीनों उँगलियाँ सीधी रहें।

लाभः शारीरिक दुर्बलता दूर करने के लिए, ताजगी व स्फूर्ति के लिए यह मुद्रा अत्यंत लाभदायक है। इससे तेज बढ़ता है।

सूर्य मुद्रा

सूर्य मुद्रा

विधिः अनामिका अर्थात सबसे छोटी उँगली के पास वाली उँगली को मोड़कर उसके नख के ऊपर वाले भाग को अँगूठे से स्पर्श करायें। शेष तीनों उँगलियाँ सीधी रहें।

लाभः शरीर में एकत्रित अनावश्यक चर्बी एवं स्थूलता को दूर करने के लिए यह एक उत्तम मुद्रा है।

ज्ञान मुद्रा

ज्ञान मुद्रा

विधि: तर्जनी अर्थात प्रथम उँगली को अँगूठे के नुकीले भाग से स्पर्श करायें। शेष तीनों उँगलियाँ सीधी रहें।

लाभः मानसिक रोग जैसे कि अनिद्रा अथवा अति निद्रा, कमजोर यादशक्ति, क्रोधी स्वभाव आदि हो तो यह मुद्रा अत्यंत लाभदायक सिद्ध होगी। यह मुद्रा करने से पूजा पाठ, ध्यान-भजन में मन लगता है। इस मुद्रा का प्रतिदिन 30 मिनठ तक अभ्यास करना चाहिए।

वरुण मुद्रा

वरुण मुद्रा

विधि: मध्यमा अर्थात सबसे बड़ी उँगली के मोड़ कर उसके नुकीले भाग को अँगूठे के नुकीले भाग पर स्पर्श करायें। शेष तीनों उँगलियाँ सीधी रहें।

लाभः यह मुद्रा करने से जल तत्त्व की कमी के कारण होने वाले रोग जैसे कि रक्तविकार और उसके फलस्वरूप होने वाले चर्मरोग व पाण्डुरोग (एनीमिया) आदि दूर होते है।

प्राण मुद्रा

प्राण मुद्रा

विधि: कनिष्ठिका, अनामिका और अँगूठे के ऊपरी भाग को परस्पर एक साथ स्पर्श करायें। शेष दो उँगलियाँ सीधी रहें।

लाभः यह मुद्रा प्राण शक्ति का केंद्र है। इससे शरीर निरोगी रहता है। आँखों के रोग मिटाने के लिए व चश्मे का नंबर घटाने के लिए यह मुद्रा अत्यंत लाभदायक है।

वायु मुद्रा

वायु मुद्रा

विधिः तर्जनी अर्थात प्रथम उँगली को मोड़कर ऊपर से उसके प्रथम पोर पर अँगूठे की गद्दी स्पर्श कराओ। शेष तीनों उँगलियाँ सीधी रहें।

लाभः हाथ-पैर के जोड़ों में दर्द, लकवा, पक्षाघात, हिस्टीरिया आदि रोगों में लाभ होता है। इस मुद्रा के साथ प्राण मुद्रा करने से शीघ्र लाभ मिलता है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

शिविर की पूर्णाहुति के समय अंतरंग साधकों को पूज्य बापू का समाधि भाषा का संकेत

चित्त की विश्रान्ति प्रसाद की जननी है। परमात्मा में विश्राम पाये हुए चित्त में गुरुगम वाणी का स्फुरण हुआः

"हे शिष्य ! हे साधक ! तू मेरे अनुभव में जितना सहमत होता जायेगा तू धार्मिक बनता जायेगा। मेरे अनुभव को जितने अंश में तू हजम करता जायेगा उतना तू महान बनता जायेगा। हम दोनों के बीच की दूरी देह के दर्शन-मुलाकात-मिलन से दूर नहीं होगी अपितु आत्मभाव से, आत्म-मिलन से ही दूर होगी।

मैं तो तेरे अन्तःकरण में दृष्टा के रूप में, चिदघन स्वरूप बस रहा हूँ। मुझे छोड़कर तू कहीं जा नहीं सकता। मुझसे छुपाकर कोई कार्य कर नहीं सकता। मैं सदा सर्वत्र तेरे साथ ही हूँ।

हे वत्स ! हे साधक ! अब मैं तुझे संसार रूपी अरण्य में अकेला छोड़ दूँ फिर भी मुझे फिकर नहीं। क्योंकि अब मुझे तुझ पर विश्वास है कि तू विघ्न-बाधाओं को चीरकर आगे बढ़ जायेगा। संसार के तमाम आकर्षणों को तू अपने पैरों तले कुचल डालेगा। विघ्न और विरोध तेरी सुषुप्त शक्ति को जगायेंगे। बाधाएँ तेरे भीतर कायरता को नहीं अपितु आत्मबल को जन्म देगी।"

इस संसार रूपी अरण्य में कदम-कदम पर काँटे बिखरे पड़े हैं। अपने पावन दृष्टिकोण से तू उन काँटो और कँकड़ों से आकीर्ण मार्ग को अपना साधन बना लेना। विघ्न मुसीबत आये तब तू वैराग्य जगा लेना। सुख व अनुकूलता में अपना सेवाभाव बढ़ा लेना। बीच-बीच में अपने आत्म-स्वरूप में गोता लगाते रहना, आत्म-विश्रान्ति पाते रहना।

हे प्रिय साधक ! तू अपने को अकेला कभी मत मानना, सदगुरु की अमीदृष्टि सदा तेरे साथ है। सदगुरु तुझे अपने नजदीक लेना चाहते हैं। तू ज्यों-ज्यों अन्तर्मुख होता जायेगा त्यों-त्यों गुरुतत्त्व के नजदीक आता जाएगा। गुरुतत्त्व के समीप होना चाहता हो तो अन्तर्मुख होता जा। फिर देश व काल की दूरी तुझे रोक नहीं सकेगी। तू कहीं भी होगा, कैसी भी परिस्थिति में होगा, जब चाहेगा तब तू मुझसे सम्बन्ध जोड़ सकेगा।

"हे वत्स ! तू अपने नित्य शाश्वत जीवन की ओर सजग रहना। इस अनित्य देह और अनित्य सम्बन्धों को माया का विलास व विस्तार समझकर तू अपने नित्य स्वभाव की ओर बढ़ते रहना। हम दोनों के पावन सम्बन्ध के बीच और कोई आ नहीं सकता। मौत की भी क्या मजाल है कि हमारे दिव्य सम्बन्ध का विच्छेद कर सके? सदगुरु और सतशिष्य का सम्बन्ध मौत भी नहीं तोड़ सकती। यह सम्बन्ध ऐसा पावन है, देश और काल से परे है। अतः प्रिय भाई! तू अपने को अकेला कभी मत मानना।"

"हे साधक ! तुझे विघ्न बाधाओं से भेजते हुए मैं झिझकता नहीं क्योंकि मुझे तुझ पर भरोसा है, तेरी साधना पर भरोसा है। तू कैसी भी उलझनों से बाहर हो जाएगा। तू अमर पद की प्राप्ति के लिए मेरे पास आया था। तेरा मेरा सम्बन्ध इस अमर पद के निमित्त ही हुआ।

संसार रूपी सागर में अपनी जीवन-नौका को खेते रहना... गुरुमंत्र और साधना रूपी पतवारें तुझको दी गई हैं। गुरुकृपा और ईश्वरकृपा रूपी हवाएँ चलती रहेंगी। उसके बल से अपने जीवन-नौका को चलाते रहना। आत्म-साक्षात्कार रूपी दीपस्तम्भ का लक्ष्य अपने सामने रखना। रिद्धि सिद्धि में फँसना नहीं। ज्वार-भाटा से घबराना नहीं। 'मेरे-तेरे' में उलझना नहीं।

हे वत्स ! हे भैया ! तू हरदम याद रखना कि तेरा लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार में है। जिस पद में भगवान साम्ब सदाशिव विश्रान्ति पाते हैं, जिस पद में भगवान आदिनारायण योगनिद्रा में आराम फरमाते हैं, जिस चिदघन परमात्मा की सत्ता से ब्रह्माजी सृष्टिसर्जन का संकल्प करते हैं वह शुद्ध आत्म-स्वरूप तेरा लक्ष्य है।

निद्रा के समय अचेतन अवस्था में, सुषुप्त अवस्था में जाने से पहले उसी लक्ष्य को याद करके फिर सोना। जब वह सुषुप्त अवस्था, निद्रा की अवस्था, अचेतन अवस्था पूरी हो तब तू छलाँग मारकर सचेतन अवस्था में से परम चेतन अवस्था में प्रवेश करना।

हे साधक ! अपनी दिव्य साधना को ही, अपने निजी अनुभव को ही प्रमाणभूत होने देना। बाहर के प्रमाण पत्रों से तू प्रभावित न होना। वत्स ! दुनिया के लोग तुझे अच्छा कहें तो यह उनका सौजन्य है। अगर तुझे बुरा कहें तो तू अपना दोष खोज निकालना। पर याद रखनाः तमाम निन्दा और प्रशंसा केवल इन्द्रियों का धोखा है, सत्य नहीं है। मान-अपमान सत्य नहीं है। जीवन-मृत्यु सत्य नहीं। अपना और पराया सत्य नहीं है। हे साधक ! सत्य तो तू स्वयं है। अपने आप में ही, अपने आत्म-स्वरूप में ही तू प्रतिष्ठित होना।

हे वत्स ! देहाध्यास को पिघलने देना। सचेतन-अचेतन अवस्थाओं को तू खेल समझना। ये अवस्थाएँ जहाँ से शक्ति लाती हैं, जहाँ से ज्ञान लाती हैं, जहाँ से आनन्द व उल्लास लाती हैं, प्रेम का प्रसाद लाती हैं उस परम चैतन्य परमात्मा का प्रसाद पाने के लिए ही तेरा जन्म हुआ है। प्यारे ! तू अपने को भाई या बहन, स्त्री या पुरुष, माँ या बाप नहीं मानना। गुरु ने तुझे साधक नाम दिया है तो उस नाम को सार्थक करते हुए अपने साध्य को पाने के लिए सदा जागृत रहना। सब नाम और गाँव देह रूपी चोले के लिए हैं। जबसे तू संत की शरण में पहुँचा है, सदगुरु के चरणों में पहुँचा है तब से तू साधक बना है। अब साध्य हासिल करके तू सिद्ध बन जा।

चातक मीन पतंग जब पिय बिन नहीं रह पाय।
साध्य को पाये बिना साधक क्यों रह जाय।।

तमाम निन्दा स्तुति को तू मिथ्या समझना। तमाम मान-अपमान के प्रसंगों को तू खेल समझना। तू अपने शुद्ध चेतन स्वभाव में प्रतिष्ठित होना। प्यारे ! अगर इतनी सेवा तूने कर ली तो गुरुदेव परम प्रसन्न होंगे। गुरु की सेवा करना चाहता है तो गुरु का ज्ञान पचाने की दृढ़ता ला।

सठ गुरु मिले वह यूं कहे कछु लाय और मोहे दे।
सदगुरु मिले वह यूं कहे नाम धणी का ले, स्वरूप सँभाल ले।।

हे साधक ! तू अपने स्वरूप को ले ले... अपने आत्म-स्वरूप में जाग जा। अपने निज अधिकार को तू सँभाल ले। प्यारे ! कब तक माया की थप्पड़ें खाता रहेगा? कब तक माताओं के

गर्भ में लटकेगा? कब तक पिताओं के शरीर से गुजरता रहेगा? पंच भौतिक देहों में से कई जन्मों तक गुजरता आया है।

वत्स ! तूने कई माँ बाप बदले हैं। भैया ! तेरी व्यतीत व्यथाएँ मैं जानता हूँ। तेरे भूतकाल के कष्टों को मैं निहार रहा हूँ। मेरे प्यारे साधक ! तेरे पर कौन-सा दुःख नहीं आया है बता? हर जन्म में दुःख के दावानल में सेका गया है। कितनी ही गर्भाग्नियों में पकता आया है। कई बार तूने असह्य दुःख सहे हैं। मेरे लाडले ! तेरी वह दयनीय स्थिति... दुःखद स्थिति... तुझे याद नहीं होगी लेकिन गुरुदृष्टि से, ज्ञान दृष्टि से, विवेकदृष्टि से वह सब समझा जा सकता है, देखा जा सकता है।

हे प्रिय साधक ! कितने ही जन्मों में, कितने ही गर्भों में, कितने ही दुःख भोगकर तू आया है। कई बार तू कीट पतंग की योनियों में था तब मार्ग में जाते हुए कुचला गया है। कई बार तू स्मशान में अग्नि की आहुति बन चुका है। अतीत में भुगते हुए दुःखों को अब बार-बार भोगना बन्द कर दे। भावी में आने वाले दुःखों पर वैदिक ब्रह्मविद्या का मरहम लगा दे। अब तू मुक्त हो जा... मुक्त हो जा वत्स !"

साधक शिष्य की हृदयवाणी झनक उठीः

"गुरुदेव ! गुरुदेव.....!! आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। मैं आपका शिष्य हूँ तो अब भवाटवी से बाहर निकलकर ही दम लूँगा। अपनी जन्म मृत्यु की परंपरा को अब आगे बढ़ने नहीं दूँगा। गुरुदेव ! मैं वचन देता हूँ- अब किसी माता के गर्भ में लटकने नहीं जाऊँगा। कोई दुष्ट वासना करके गर्भाशयों में नहीं जाऊँगा। आप के दिये हुए ज्ञान को ठीक से परिपक्व करूँगा।

कालु नाम की मछली स्वाति नक्षत्र के दिनों में समुद्र की सतह पर आकर जलवृष्टि की प्रतीक्षा करती है। मेघ से बरसता हुआ जल का एक बूँद मिल जाता है तो उसे सँभालकर ग्रहण कर लेती है। सागर की गहराई में उतर जाती है और उस जल-बिन्दू को मोती में रूपान्तरित कर देती है।

ऐसे ही गुरुदेव ! आपके दिव्य वचन को मैं धारण करूँगा... हृदय की गहराई में उसे परिपक्व करूँगा। आपके उपदेश को, साधना के मार्गदर्शक संकेत को मैं ब्रह्मज्ञान रूपी मोती में, आत्म-साक्षात्कार रूपी मोती में रूपान्तरित कर लूँगा। गुरुदेव ! मैं आपको वचन देता हूँ। मैं इस साध्य को सिद्ध करने में लगा रहूँगा।

मैं आपसे नम्र प्रार्थना करता हूँ कि अगर मैं इस कार्य में चूक जाऊँ, प्रमाद करूँ तो आप मेरा कान पकड़ कर जगा देना, स्वप्न में आकर भी संकेत करना। मुझे माया की नींद में सोने न देना।"

शिष्य के पवित्र हृदय से गुरुआज्ञा शिरोधार्य करने का वचन सुनकर गुरुजी शिष्य को प्रोत्साहन देने लगे किः

"वत्स ! बार-बार तू अपने हृदय के गहन प्रदेश में गोता लगाते रहना। अपनी अन्तर्मुखता बढ़ाते रहना। अपने नित्य, शुद्ध, बुद्ध, निरंजन नारायण स्वरूप में नहाते रहना। शरीर का स्नान देर सबेर करेगा तो चल जायेगा। लेकिन हे साधक ! तू मुझमें स्नान ठीक से करते रहना। तेरे सौम्य और पवित्र जीवन को निहारकर पड़ोसी लोग भी पवित्र हो जायें, तू ऐसा बनना। वत्स ! पाशवी जीवन में सरकने वाले लोगों के सम्पर्क में आकर बह न जाना। पूर्व जीवन में की हुई गलतियों को बार-बार याद करके घबराना मत। अब तो तूने गुरुमंत्र का सहारा ले लिया है। साधना साथ पा लिया है। ज्ञानगंगा का स्नान तुझे मिल गया है।

हे साधक ! अब तू ऐसा समय ला कि मैं तेरे जन्म मृत्यु चक्र समाप्त हुआ देखूँ। मैं ऐसे दिन की ताक में हूँ। कब तक तू गर्भवास का दारुण दुःख भोगता रहेगा? कब तक गर्भाग्नियों में पकता रहेगा? कब तक माताएँ बदलता रहेगा? कब तक बाहर के नाते-रिश्ते जोड़ जोड़कर अन्त में काल का ग्रास बनता रहेगा? सबको अपना बना-बनाकर फिर पराये करता रहेगा?

भैया ! जैसे नदी के प्रवाह में कई तिनके परस्पर कई बार मिलते और बिछुड़ते रहते हैं ऐसे ही इस संसार की सरिता में पत्नी-परिवार, मित्र, सगे-सम्बन्धी के मिलन का संयोग नहीं है क्या? जल-प्रवाह की तरंगों में जैसे तिनके मिलते बिछुड़ते हैं वैसे ही काल की तरंगों में सब सम्बन्ध बनते बिगड़ते हैं। बाढ़ के जल-प्रवाह में तिनकों के सम्बन्ध की भाँति ही पति-पत्नी का सम्बन्ध, रिश्तेनातों का सम्बन्ध है। अतः प्यारे साधक ! तू उन अनित्य सम्बन्धों में आसक्ति न करना।

रेलगाड़ी के डिब्बे में यात्री साथ बैठते हैं, मिलते हैं, दोस्ती कर लेते हैं। एक दूसरे का पता लिख लेते हैं। स्टेशन पर एक दूसरे का सामान उतारने में सहायक बनते हैं। गेट तक अलविदा देने जाते हैं। 'फिर मिलेंगे... पत्र लिखेंगे....' ऐसे वादे भी करते हैं। लेकिन समय पाकर अपना अपना रास्ता पकड़ लेते हैं। सब भूल जाते हैं।

ऐसे ही यह संसार-गाड़ी के यात्रियों का सम्बन्ध भी अनित्य है। आयुष्य का टिकट पूरा हो जाता है तो सब बिछुड़ जाते हैं। हमारा स्टेशन आ जायेगा तो हम उतर जायेंगे। सगे-

सम्बन्धियों का स्टेशन आ जायेगा तो वे उतर जायेंगे। हम लोग स्मशान तक छोड़ने भी जायेंगे। याद भी करेंगे कब तक?

प्यारे साधक ! तू इस संसार को सत्य न मानना लेकिन अपने सत्य स्वरूप में, परम सत्य परमात्मा में प्रतिष्ठित होना। जब तक तू परम सत्य का दर्शन न कर ले, परम तत्त्व से पूर्णतया एकत्व न साध ले तब तक तू सावधान रहना। आलस्य, प्रमाद, विलासिता में न डूबना। सतत सजग रहना। लगे रहना अपनी साधना में। कूद पड़ उस परम सत्य परमात्मा में। आत्म-स्वरूप के आनन्द में डूब जा। शाश्वत सत्य का अनुभव करने के लिए दृढ़ निश्चय कर।

किसी का खाया हुआ भोजन तेरी भूख नहीं मिटायेगा। किसी का पिया हुआ जल तेरी प्यास नहीं बुझायेगा। आत्म-साक्षात्कार का अनुभव तू स्वयं करना वत्स ! झूठी दुआओं और खोखले आश्वासनों में रुक नहीं जाना। कोई गुरु या माता-पिता मृत्यु के बाद तुझे कन्धे पर उठाकर सचखण्ड में नहीं ले जायेंगे। सदगुरु के उपदेश को तू अपना अनुभव बना ले, प्यारे ! गुरु के अनुभव को तू पचा ले।

प्यारे शिष्य ! तू ज्यों ज्यों अन्तर्मुख होता जायेगा, गहरी यात्रा करता जायेगा त्यों त्यों मेरे निकट आता जायेगा। लोगों की दृष्टि में चाहे तू हजारों मील दूर दिखे, मेरे इर्दगिर्द चिपके हुए लोग नजदीक दिखे लेकिन तू कहीं भी होगा, जितना ज्यादा अन्तर्मुख रहेगा उतना मेरे ज्यादा नजदीक होगा।

फूफी ने तेरा नाम कुछ रखा होगा, लोगों ने कुछ रखा होगा। चपरासी तुझे साहब बोलता होगा, ग्राहक तुझे सेठ कहता होगा, सेठ तुझे मुनीम मानता होगा लेकिन सदगुरु ने तेरा नाम साधक रखा है। साधना ही तेरा जीवन होना चाहिए। आत्मज्ञान ही तेरा साध्य होना चाहिए।

प्यारे शिष्य ! साधक जैसा पद दुनिया में दूसरा कोई पद नहीं है। साधक का सम्बन्ध परमात्मा के साथ है। सेठ का सम्बन्ध पगार के साथ, नेता का सम्बन्ध कुर्सी के साथ है। लेकिन हे साधक ! तेरा सम्बन्ध सदगुरु के साथ है, परमात्मा के साथ है। इस दिव्यातिदिव्य सम्बन्ध का सतत स्मरण करके तू अपने स्वरूप को पा लेना।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

बीजमंत्रों के द्वारा स्वास्थ्य-सुरक्षा

भारतीय संस्कृति ने आध्यात्मिक विकास के साथ शारीरिक स्वास्थ्य को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

आज कल सुविधाओं से सम्पन्न मनुष्य कई प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों को आजमाने पर भी शारीरिक रोगों व मानसिक समस्याओं से मुक्त नहीं हो सका। एलोपैथी की जहरीली दवाइयों से ऊबकर अब पाश्चात्य जगत के लोग Alternative Medicine के नाम पर प्रार्थना, मंत्र, योगासन, प्राणायाम आदि से हार्ट अटैक और कैंसर जैसी असाध्य व्याधियों से मुक्त होने में सफल हो रहे हैं। अमेरिका में एलोपेथी के विशेषज्ञ डॉ. हर्बट बेन्सन और डॉ. दीपक चोपड़ा ने एलोपेथी को छोड़कर निर्दोष चिकित्सा-पद्धति की ओर विदेशियों का ध्यान आकर्षित किया है जिसका मूल आधार भारतीय मंत्रविज्ञान है। ऐसे वक्त हम लोग एलोपेथी की दवाइयों की शरण लेते है जो प्रायः मरे हुए पशुओं के यकृत (कलेजा), मीट एक्सट्रेक्ट, माँस, मछली के तेल जैसे अपवित्र पदार्थों से बनायी जाती हैं। आयुर्वेदिक औषधियाँ, होमियोपैथी की दवाइयाँ और अन्य चिकित्सा-पद्धतियाँ भी मंत्रविज्ञान जितनी निर्दोष नहीं हैं।

हर रोग के मूल में पाँच तत्त्व यानी पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश की ही विकृति होती है। मंत्रों के द्वारा इन विकृतियों को आसानी से दूर करके रोग मिटा सकते हैं।

डॉ. हर्बट बेन्सन के शोध के बाद कहा है। Om a day, keeps doctors away. **ॐ का जप करो और डॉक्टर को दूर ही रखो।**

विभिन्न बीजमंत्रों की विशद जानकारी प्राप्त करके हमें अपनी सास्कृतिक धरोहर का लाभ उठाना चाहिए।

पृथ्वी तत्त्व

इस तत्त्व का स्थान मूलाधार चक्र में है। शरीर में पीलिया, कमलवायु आदि रोग इसी तत्त्व की विकृति से होते हैं। भय आदि मानसिक विकारों में इसकी प्रधानता होती है।

विधिः पृथ्वी तत्त्व के विकारों को शांत करने के लिए '**लं**' बीजमंत्र का उच्चारण करते हुए किसी पीले रंग की चौकोर वस्तु का ध्यान करें।

लाभः इससे थकान मिटती है। शरीर में हल्कापन आता है। उपरोक्त रोग, पीलिया आदि शारीरिक व्याधि एवं भय, शोक, चिन्ता आदि मानसिक विकार ठीक होते हैं।

अनुक्रम

जल तत्त्व

स्वाधिष्ठान चक्र में चल तत्त्व का स्थान है। कटु, अम्ल, तिक्त, मधुर आदि सभी रसों का स्वाद इसी तत्त्व के कारण आता है। असहनशीलता, मोहादि विकार इसी तत्त्व की विकृति से होते हैं।

विधिः '**वं**' बीजमंत्र का उच्चारण करते हुए चाँदी की भाँति सफेद किसी अर्धचन्द्राकार वस्तु का ध्यान करें।

लाभः इस प्रकार करने से भूख-प्यास मिटती है व सहनशक्ति उत्पन्न होती है। कुछ दिन यह अभ्यास करने से जल में डूबने का भय भी समाप्त हो जाता है। कई बार 'झूठी' नामक रोग हो जाता है जिसके कारण पेट भरा रहने पर भी भूख सताती रहती है। ऐसा होने पर भी यह प्रयोग लाभदायक। साधक यह प्रयोग करे जिससे कि साधना काल में भूख-प्यास साधना से विचलित न करे।

अनुक्रम

अग्नि तत्त्व

मणिपुर चक्र में अग्नितत्त्व का निवास है। क्रोधादि मानसिक विकार, मंदाग्नि, अजीर्ण व सूजन आदि शारीरिक विकार इस तत्त्व की गड़बड़ी से होते हैं।

विधिः आसन पर बैठकर '**रं**' बीजमंत्र का उच्चारण करते हुए अग्नि के समान लाल प्रभावाली त्रिकोणाकार वस्तु का ध्यान करें।

लाभः इस प्रयोग से मन्दाग्नि, अजीर्ण आदि विकार दूर होकर भूख खुलकर लगती है व धूप तथा अग्नि का भय मिट जाता है। इससे कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने में सहायता मिलती है।

अनुक्रम

वायु तत्त्व

यह तत्त्व अनाहत चक्र में स्थित है। वात, दमा आदि रोग इसी की विकृति से होते हैं।

विधिः आसन पर बैठकर '**यं**' बीजमंत्र का उच्चारण करते हुए हरे रंग की गोलाकार वस्तु (गेंद जैसी वस्तु) का ध्यान करें।

लाभः इससे वात, दमा आदि रोगों का नाश होता है व विधिवत दीर्घकाल के अभ्यास से आकाशगमन की सिद्धि प्राप्त होती है।

अनुक्रम

आकाश तत्त्व

इसका स्थान विशुद्ध चक्र में है।

विधिः आसन पर बैठकर '**हं**' बीजमंत्र का उच्चारण करते हुए नीले रंग के आकाश का ध्यान करें।

ॐॐॐॐॐॐॐ

पाठकों की सुविधा के लिए उपरोक्त चक्रों के बारे में चित्र सहित वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

यौगिक चक्र

चक्रः चक्र आध्यात्मिक शक्तियों के केन्द्र हैं। स्थूल शरीर में ये चक्र चर्मचक्षुओं से नहीं दिखते हैं। क्योंकि ये चक्र हमारे सूक्ष्म शरीर में होते हैं। फिर भी स्थूल शरीर के ज्ञानतंतुओं-स्नायुकेन्द्रों के साथ समानता स्थापित करके उनका निर्देश किया जाता है।

हमारे शरीर में सात चक्र हैं और उनके स्थान निम्नांकित हैं-

1. **मूलाधार चक्रः** गुदा के नज़दीक मेरूदण्ड के आखिरी बिन्दु के पास यह चक्र होता है।
2. **स्वाधिष्ठान चक्रः** नाभि से नीचे के भाग में यह चक्र होता है।
3. **मणिपुर चक्रः** यह चक्र नाभि केन्द्र पर स्थित होता है।
4. **अनाहत चक्रः** इस चक्र का स्थान हृदय मे होता है।
5. **विशुद्धाख्य चक्रः** कंठकूप में होता है।
6. **आज्ञाचक्रः** यह चक्र दोनों भौहों (भवों) के बीच में होता है।
7. **सहस्रार चक्रः** सिर के ऊपर के भाग में जहाँ शिखा रखी जाती है वहाँ यह चक्र होता है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम